मन्दिर

10४२

FORM 1

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indi[illegible]
Address	Ma[illegible] Hoshiarpur
Editor's Name	Rav[illegible]
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, [illegible] Hoshiarpur
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charit[illegible] Trust, Hoshiarpur

I, Ravi Nanda hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 — Signature of Publisher

Printed and Published by : Ravi Nanda at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

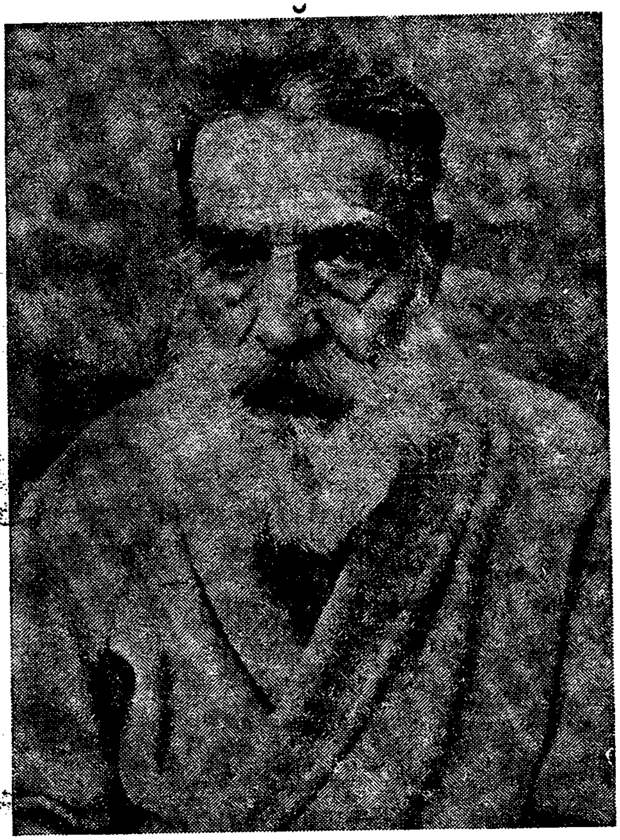

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

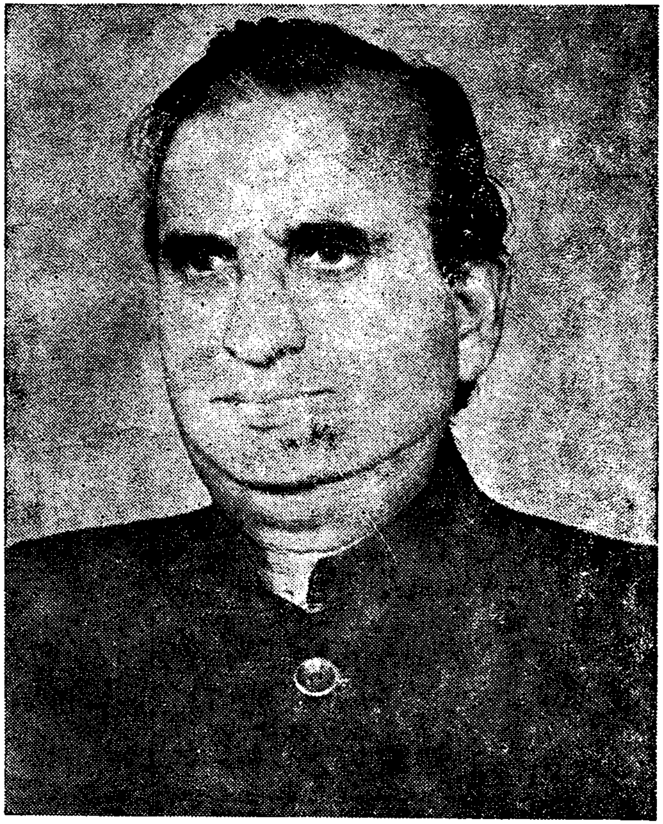

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मासिक-

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
श्री रवि नन्दा

वर्ष 19	मंगलवार 10 नवम्बर, 1992	संख्या 7

आध्यात्मिक जीवन

परमसन्त पूर्णधनी मालिके कुल हजूर दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

प्रत्येक व्यक्ति को आध्यात्मिक जीवन जीने का अधिकार है। इससे एक भी व्यक्ति वंचित नहीं किया जा सकता। परन्तु आध्यात्मिकता के विषय में बहुत ही कम व्यक्ति परिचित हैं। इसी के समझाने बुझाने आध्यात्मिकता का उत्तराधिकारी बनाने और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत के पूर्ण प्रयत्न का नाम ज्ञान, ध्यान, भक्ति, सेवा वैराग्य और अभ्यास है।

आध्यात्मिकता क्या है ? आध्यात्मिकता और कोई वस्तु नहीं वह केवल शरीर, मन, तथा आत्मा के आपसी मेल-जोल का नाम ही आध्यात्मिकता है। जिसने इस बात को समझ लिया, वह आध्यात्मिक हो गया। जो लोग आध्यात्मिकता की समस्याओं को भली-भाँति समझ लेते हैं, उनका जीवन आनन्दमय बन जाता है। इसे केवल एक बार समझ लेना काफ़ी है, दो चार या दस बार समझने की कोई आवश्यकता ही नहीं। परन्तु समझ लेने से अभिप्राय

चया है। समझ लेने से अभिप्राय यह है कि मनुष्य का जीवन क्रियात्मक रूप से ज्ञान, बुद्धि और खुशी के सच्चे मार्ग पर आ जाए। मौखिक या विद्वता के रूप में समझ लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उस पर व्यावहारिक रूप से चलना है। सच्चे मार्ग पर तो कभी न कभी सब ही को आना है चाहे कोई आज आए या दो चार सौ साल के बाद। मण्डल ने जिस बिन्दु से अपनी गति आरम्भ की है, उसे उस पर हर अवस्था में पहुँचना ही पड़ेगा और प्रकृति शीघ्र या देर से पहुँचाए बिना चैन नहीं लेने देगी। इसलिए जिनकी बुद्धि तीव्र है, वे जितनी जल्दी इस पर आ जाएं, उतना ही उनके लिए लाभदायक है।

हमारा यह शरीर कर्मकाण्डी, मन ज्ञानकाण्डी और आत्मा उपासना काण्डी है। किन्तु इन तीनों का आपस में मेल मिलाप है। शरीर से काम करना जीवन के प्राकट्य का साधन है। मन से विचार करने से सच्चाई देखने की सम्भावना है और आत्मा से मेरा आनन्द और प्रसन्नता की निशानी है। तुम शरीरधारी हो, शरीर से काम लो। मन वाले हो, मन से सोचो समझो। तुम आत्मा हो, आत्मानन्द के उत्तराधिकारी बनो। शरीर का सम्बन्ध कर्म से है, मन का सम्बन्ध संकल्प, विकल्प चिन्ता और ज्ञान से है और आत्मा का सम्बन्ध प्रसन्नता सरूर तथा आनन्द से है।

आपस में इस प्रकार गुत्थे हुए और ओत प्रोत ज्ञात होते हैं कि उनमें कोई अन्तर दिखाई ही नहीं देता।

जब व्यक्ति स्वस्थ होता है, तब उसे शरीर का ध्यान नहीं रहता, परन्तु जब वह बीमार हो जाता है, तब उसे शरीर का ध्यान आता है। मन की शान्ति के समय किसी को पता नहीं होता कि मन भी कोई वस्तु है। परन्तु जब कभी चिन्ता और अशान्ति आती है फिर मन बेचैनी महसूस करता है। मुसीबत आने पर, इच्छित वस्तु से जुदाई होने पर, प्राण देने, प्राण खोने और प्राण रहित होने की सूझती है। परन्तु होता क्या है ? न तो कोई शरीर रहित होता है, न मन रहित होता है और न ही प्राण रहित। ये सब वैसे ही भ्रम हैं, जैसे उनके भिन्न - 2 होने का विचार भ्रम है। आत्महत्या भी कोई मरता नहीं है, असली शरीर जन्म जन्मान्तर तक साथ रहता है। मन को समाप्त करने, दबाने या एकाग्र करने से व्यक्ति मन से पृथक नहीं होता। मन भी जन्म-जन्मान्त्र तक साथ रहता है। मन का मारना भी एक भ्रम है, इसी प्रकार प्राण रहित होने की युक्ति भी बेकार है। प्राण भी तो जन्म-जन्मान्तर तक साथ ही रहते हैं। मानव सत्यता को न समझ कर भ्रम में फँस कर गोरखधन्धे में फसा हुआ है। अतः मरो नहीं, क्योंकि मरना सम्भव ही नहीं। जियो ! और जीना अनिवार्य है। केवल सच्चाई को समझ लो फिर न ही केवल तुम्हारी सारी चिन्ताओं और प्राणों की हमेशा के लिए समाप्ति हो जायेगी, बल्कि तुम असली और अमर जिन्दगी के उत्तराधिकारी बन जाओगे। उत्तराधिकारी तो तुम अब भी हो, परन्तु तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं है। उस ज्ञान को प्राप्त करने की विधि क्या ?

विधि यह है कि शरीर, मन और आत्मा में आपसी

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

एकता कर्म, विचार तथा व्यवहार में एकसारता, धर्म, ज्ञान उपासना में बराबरी ज़ात गुण और जाति गुणों के सम्बन्धों के साथ स्वाभाविक मेल रखो। यही एक विधि है और इसी ही का नाम आध्यात्मिकता है।

आध्यात्मिकता का सच्चा मार्ग तो एक ही है। परन्तु क्योंकि हम दोपने की दुनिया में रहते हैं, इसलिए ऋषियों ने आम लोगों के लिए दो मार्ग निर्धारित किए हैं। एक है श्रेय मार्ग और दूसरा है प्रेय मार्ग। श्रेय मार्ग श्रेष्ठ तथा ऊँचा है। प्रेय मार्ग दिल को प्रिय लगने वाला, लुभाने वाला है। श्रेय मार्ग आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है प्रेयमार्ग हानिकारक सिद्ध होता है, क्योंकि इस मार्ग में हमारा मन के ऊपर कोई अधिकार नहीं होता मन को वश में न रखने के कारण हम इच्छाओं की पूर्ति करने से लगे रहते हैं इच्छाएं पूरी नहीं होतीं हमें दु:ख होता है।

श्रेय मार्ग को अपनाने में आरम्भ में तो कठिनाईएं होती हैं, क्योंकि मन को एकाग्र करना बहुत ही कठिन है। प्रेय मार्ग में यह कठिनाई नहीं होती, क्योंकि मन ने जो चाहा करवा लिया। यह मार्ग आरम्भ में तो बड़ा सुहावना लगता है, परन्तु इच्छाओं की पूर्ति करते जाने में अन्त में इसका परिणाम बुरा ही निकलता है। इसलिए सन्त सदा श्रेय मार्ग को ही अपनाने की शिक्षा देते हैं।

श्रेय मार्ग शाक्त या शैव धर्म का दक्षिण मार्ग है तथा प्रयमार्ग शक्ति या शैव धर्म का वाम मार्ग है। दक्षिण मार्ग का मूल दक्ष है। दक्ष का अर्थ है सबलता। इसके आंशिक अर्थ हैं सच्चा, ईमानदार, दाहिना, दक्षिण आदि - 2। यह दुर्गा अर्थात् इच्छा शक्ति की देवी का दाहिना अंग है।

वाम (बाया) शब्द का मूल 'वा' (चलना) और 'म' (मन) है। इसका अर्थ हुआ गति में आना या चलायमान होना और आंशिक अर्थ है बायां विरोधी, सुन्दर, टेढ़ा, छोटा, कामवासना का देवता, स्त्री की छाती, पशु, सांप, दौलत, लक्ष्मी, गौरी, सरस्वती, गधी, घोड़ी, हथिनी आदि। यह सफलता की देवी दुर्गा का बायां अंग है। जब तुम शब्दों के अर्थों पर ध्यान दोगे तो तुम्हें असलियत की समझ आ जायेगी।

अब श्रेय और प्रेय मारग की दृष्टि से सोचो। श्रेय के असली तथा आंशिक अर्थ नेक हैं। जो मार्ग बिना हानि पहुँचाये निशाने तक ले जाय, वह श्रेय है। आदमी जिस वस्तु को देख कर, बहुत हैरान हो जाय या होश खो बैठे, वह प्रेय मार्ग है।

भक्ति, सच्चा ज्ञान, योग सब श्रेय मार्ग हैं। परन्तु मारण, मोहन, उच्चाटन मैस्मरेजम, हिपनाटिजम, टैलीपैथी, वाम मार्ग के सारे अभ्यास सब प्रेय मार्ग हैं जिनका उद्देश्य इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छाओं की पूर्ति, मन का अहंभाव, नेकनामी, नुमाइश, सांसारिक स्वार्थों की पूर्ति है। यह है अन्तर दोनों मार्गों का।

श्रेयमार्ग में सम्भव है कि परिणाम तक पहुँचने में विलम्ब दिखाई दे और प्रेय मार्ग में एक सीमा तक कामयाबी की सूरत जल्दी दिखाई दे। परन्तु पहले यानि कि श्रेय मार्ग में डगमगाने की सम्भावना कम रहती है और प्रेय मार्ग में गिर जाने का भय अधिक होता है। श्रेय मार्ग पर चलने से व्यक्ति में इतनी इच्छा शक्ति बढ़ जाती है

कि वह अपने अभ्यास और अनुभव की दृढ़ता पर मंजिले मकसूद तक रसाई के दृश्य खुली आँखों से देखने लगता है। श्रेय मारग अहंभाव की पूर्ति की ओर से ध्यान छुड़ा देता है और आनन्द, होइए वही जो राम रचि राखा पर रहने का आदि बना देता है और प्रेय मारग गलत अहंभाव की पूर्ति की ओर ध्यान दिलाता हुआ अपने सीमित व्यक्तित्व को उभारता रहता है। श्रेय मारग को हम गुरु मत कह सकते हैं और प्रेम-मारग को मन मत। प्रेय मारग की शिक्षा तन्त्र है और श्रेय मारग की शिक्षा मन्त्र है।

वैसे दोनों ही मारग आध्यात्मिकता के हैं। अब यह मनुष्य का काम है कि वह दोनों में से किस को पसन्द करते हैं। हम तो सांसारिक कारोबार तक को, आध्यात्मिकता का नाम दे सकते हैं, परन्तु उसमें शर्त यह है कि व्यक्ति के मन की घड़त विशेष प्रकार की बना ली जाय। परन्तु यह बात इतनी सरल होते हुए भी लोगों की समझ में कम आयेगी। फिर भी इतना तो हो सकता है कि जैसे मनुष्य गाने बजाने और व्यायाम आदि के लिए समय निकाल सकता है वैसे ही आध्यात्मिकता (अभ्यास) के लिए भी कुछ समय तो निश्चित करे, जिससे उसके शरीर, मन और आत्मा गुथ कर एक साथ हो जायं।

❈ ❈

'आदि और अन्त के मरम को सत्संग में पाया'

परमसन्त परमदयाल पण्डित फ़कीर चन्द जी महाराज

आदि अन्त के मरम को, सत्संग में पाया।
खुली आँख तब तत्त्व पद, दृष्टि में आया।।
अपने आप में खो गये, भूला निज आपा।
मापा आप को नहीं, किया सब का मापा।।
गुरु मिले निज दया से, अपना आपा दरसाया।
अपने आप में थे छिपे, सब ब्रह्म और माया।।
अपने आप का ज्ञान नहीं, औरों को तो जाना।
सब विधि जान अनजान था, बिनु गुरु के ज्ञाना।।
आपे में गुरु ज्ञान था, गुरु ने आप ही लखाया।
भरम मिटा दुरगति गई, आपे को जब पाया।।
आप आप में आप था, आपे के ही भीतर।
आप मिला निज घट मिला, अब कुछ रहा न बाहर।।
राधास्वामी की दया से, अपने आपे को बूझा।
आपे में जब लख लिया, सब कुछ तब ही सूझा।।

जीवन मिला, चेतना आई। किसी वस्तु की जिज्ञासा

हुई। जिसकी जिज्ञासा हुई, उसको मैं मालिक मानता था, सृष्टि का रचने वाला, सृष्टि का आधार मानता था। मगर हिन्दू परिवार में जन्म लेने के कारण, यह संस्कार विरासत में मिला था कि मालिक मानव का रूप धारण करके इस पृथ्वी पर आया करता है। मैं उस मालिक को मनुष्य रूप में देखने के लिए पागल हो उठा। उन्मत्त हो कर एक दिन लगातार चौबीस घण्टे तक मालिक के मनुष्य के रूप में देखने के लिए रोता ही रहा लोगों ने समझा फ़कीर पागल हो गया था। एक दृश्य मुझे दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज के चरणों में ले गया। उन्होंने मुझे लाहौर अपने पास बुलाकर सन्तमत की शिक्षा दी और राधास्वामी मत में दीक्षा दी। अन्त में उन्होंने मुझे साधन तथा अभ्यास करने को कहा। मैंने उसी समय मन ही मन इस बात का प्रण किया था कि इस मत पर चल कर जो कुछ भी मैं अनुभव करूँगा, वह ज्यों का त्यों दुनिया को बता जाऊँगा, कुछ छिपाऊँगा नहीं। मैंने तीन सत्संग 'आदि और अन्त' के विषय में राधास्वामी मत की वाणी के और निज अनुभव के आधार पर दिए हैं। बुद्धि के आधार पर नहीं दिए। क्यों दिए ? बेबसी। जब कोई वस्तु बन जाती है, तो वह अपनी अभिव्यक्ति करती है। सूर्य बना हुआ है, वह गर्मी देता है। चन्द्रमा बना हुआ है, वह प्रकाश और शीतलता देता है। इनके वश में नहीं है कि वह गर्मी तथा शीतलता देना बन्द कर दें। इसी तरह मेरे भी वश में नहीं है कि मैं सत्संग न दूँ अपना अनुभव दूसरों के साथ बाँटू नहीं। दूसरे हर मनुष्य के ऊपर तीन प्रकार के ऋण होते हैं मातृ पितृ ऋण, गुरु ऋण तथा राज ऋण। चूँकि दाता ने मुझे यह काम सोंपा था, उस गुरु ऋण को चुकाने के लिए मैं यह काम करता चला जा रहा हूँ। उपरोक्त शब्दों

लिखा है :---

आदि अन्त के मरम को, सत्संग में पाया।
खुली आंख तब तत्त्व पद, दृष्टि में आया ।।

मेरी समझ में जो आया, मैंने आपको तीन सत्संगों में बता दिया। मैं मालिक की खोज करता चला आ रहा हूँ। मैंने साकार को माना। मेरे अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि जिस साकार को मैं मानता था, वह मेरे अपने ही मन का खेल था, अपना ही विश्वास था। एक आदमी मन्दिर में जाता है, मूर्ति की पूजा करता है, उसे मत्था टेकता है। उसकी मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं, दूसरा आदमी जाता है मूर्ति को तोड़ देता है मन्दिर को बर्बाद कर देता है। इससे क्या सिद्ध होता है ? यह सिद्ध होता है कि लोगों के मन के खेल, विश्वास फ़रक - २ हैं और जिस साकार मालिक को मैं मालिक मानता था, वह भी मेरा निजी विश्वास था। वह असली मालिक नहीं था, मेरे ही मन की रचना थी। जब निराकार को माना, तो चौबीस घण्टे तक लगातार रो रो कर उसे पुकारा और कहा, "हे मालिक ! मुझे मनुष्य के रूप में दर्शन दो।" उस समय मैंने अपने मन में किसी की मूर्ति तो नहीं बनाई थी, निराकार की ही तो पूजा की थी। फिर भी मेरी प्रार्थना सुन कर, निराकार साकार में परिवर्तित हो गया मेरे अन्तर में दाता की मूर्ति प्रगट हुई। मैंने उस निराकार को दाता के साकार रूप में पाया। जिस प्रकार साकार की पूजा करने वाले का अपने ही मन का विश्वास होता है कि वह उसकी मूर्ति बना लेता है, ठीक उसी प्रकार ही निराकार की पूजा करने वाले भी, अपने मन में मूर्ति बना लेते हैं। यह उनका अपना

ही विश्वास होता है। जब मेरे अन्तर में दाता का रूप प्रगट होता था, वह भी मेरे अपने ही मन का खेल होता था।

जब आप सत्संगियों ने मुझे यह कहा कि मेरा प्रकाशवान रूप, आपके अन्दर प्रगट होता है, तो मैं दंग रह गया कोई कहता है कि बाबा ! चन्द्रमा के अन्दर देवताओं के बीच तेरे दर्शन हुए। मैं जानता हूँ कि मैं तो वहाँ था नहीं, तो मुझे विश्वास हो गया कि जिन सत्संगियों के अन्तर में, जो प्रकाश पैदा हुआ, जो उन्होंने प्रकाश के देवता देखे, वे उनके अपने ही मन के भाव थे, अपने ही मन के खेल थे।

इलाहाबाद में हज़ारीसिंह नाम का एक सूबेदार था। वह एक बार इलाहाबाद स्टेशन पर मुझे मिलने आया। उसके हाथ में फूलों का एक हार था और बहुत से अंगूर थे। उसने मेरे बाज़ू को इतने ज़ोर से दबाया कि मेरी जान निकलने को आ गई। वह था फ़ौज का लम्बा चौड़ा आदमी और मैं हूँ दुबला पतला व्यक्ति। मैंने उसकी ओर देख कर कहा, "बाबा ! तू है कौन और तुम यह क्या पागलपन कर रहे हो ?"

वह बोला, "वाह बाबा जी ! वाह ! क्या आप मुझे जानते नहीं ?

मैं बोला, "नहीं, मैं तो तुम्हें नहीं जानता।"

वह बोला, "वाह बाबा ! इतने जल्दी भूल गए मुझे। अभी - अभी दशहरे के अवसर पर नाम दान दिया था। आज ढाई बजे रात को आपने मेरे घर आकर मुझे बताया कि मैं आपको आज शाम के पाँच बजे इलाहाबाद रेलवे स्टेशन के प्लैटफार्म नं 5 पर आ कर

मिलूँ।''

वह जफ्फी मारे हुए मेरे मुँह में अंगूर डालने लगा। अब मैं सोचता हूँ कि क्यों फ़कीरचन्द क्या तुम उसको जानते हो? वह कहता है कि उसने मेरे से नाम लिया है, मैं तो उसको जानता तक भी नहीं।''

मैंने आदि अन्त के भेद को कहाँ से पाया? सत्संग में ही पाया। दाता ने असलियत और आदि अन्त के विषय में मुझे समझाने को बहुत कोशिश की, परन्तु मैं उस समय समझ नहीं सका। मुझे हो चेताने के लिए उन्होंने मुझे गुरु पदवी दी और 1918 में मुझ से कहा, "ऐ फ़कीर! मेरी आज्ञा का पालन करो, सत्संग कराना तथा नाम दान देना शुरू कर दो। तुम्हें सच्चे राधास्वामी दयाल सतगुरु के दर्शन सत्संगियों के रूप में ही होंगे।''

आप लोगों को सत्संग करने से तथा दाता दयाल की आपार कृपा के कारण असलियत मेरी समझ में आ गई। वह मालिक क्या है? वह अकह, अगाध, अपार तथा अनामी है, मेरी अपनी जो सुरत है, वह उसकी एक अंश है। वह उसकी मौज से ही इस शरीर में आई। उसको मालिक की खोज की जिज्ञासा हुई, जब सद्गुरु मिल गए, जिन्होंने भेद दे दिया कि जितना भी तुम्हारे अन्तर का खेल है वह तुम्हारी ही अपनी रचना है। 'जैसा जिसका ख्याल वैसा उसका हाल', 'जैसी उसकी मति, वैसी उसकी गति' है। मेरी यह अपनी इच्छा थी, वासना थी कि ज़िन्दगी के अनुभव को लोगों को बता जाऊँगा। इसलिए यह काम करता चला जा रहा हूँ। मैं अपने अनुभव के बाद आपको यह कह रहा हूँ कि अपने आप को जानने तथा पहचानने के

बाद कि मनुष्य के अन्तर में, उस मालिक की खोज करने की जो लालसा होती है, जिज्ञासा होती है, जिसके कारण वह मन्दिर, मसजिद या गुरुद्वारों में जाता है या सन्तों और महात्माओं के पीछे - 2 घूमता है, वह जिज्ञासा समाप्त हो जाती है। इससे अधिक अपने आपका भली भाँति जानने वाले सन्त महात्मा भी कुछ नहीं कर सकते। इस समय भारतवर्ष में क्या हो रहा है ? है कोई ऐसा सन्त जो दुनिया को इस आपत्ति से बचा सके ? है तो वह सामने क्यों नहीं आता ? प्रत्येक मनुष्य को जो कुछ भी मिलता है वह उसके अपने ही कर्मों का फल होता है। जैसा उसका अपना कर्म है, जैसी उसकी नीयत है, जैसा उसका ख्याल है वैसा ही उसको फल मिलेगा। कर्म के फल से आज तक कोई नहीं बचा, कोई भी नहीं, चाहे वह सन्त हो, परम सन्त हो, महात्मा हो, पीर हो पैगम्बर हो, अवतार हो, कोई भी नहीं बच सकता। जब मुझे इस बात का ज्ञान हो गया, तो मुझे शान्ति मिली।

मैं आज सुबह रेडियो पर सुन रहा था गुरु नानक की एक वाणी, जिसका भाव यह था कि वह कारन करन करीम है। कोई उसको अल्लाह कहता है, कोई खुदा कहता है, कोई राम, कोई कृष्ण कोई वेद पाठी है तो कोई अंजील को पढ़ने वाला। जिसने मालिक की आज्ञा को पहिचान लिया, वह तर गया। मुझे यह नहीं मालुम कि गुरु नानक देव ने मालिक की आज्ञा को क्या पहचाना। मैंने तो उसकी आज्ञा से यही समझा कि वह एक तत्त्व है अकाह, अपार अनामी। उसमें गति होती है, शब्द प्रगट होता है, सुरत होती है, अगम, अलख सतलोक बन जाते हैं। उस सतलोक में जो शक्ति है वह सोहंग बन जाती है। वही शक्ति

फिर महासुन्न में आ जाती है और त्रिकुटी में आ कर वह ओंकार बन जाती है और ओंकार बन कर, इस सृष्टि की रचना करती है। मैंने यह आज्ञा पहिचानी कि संसार में यह जितने भी खेल हो रहे हैं, यह सब उसी की इच्छा है, उसी की ही आज्ञा है, उसी का ही खेल है। यह खेल कब से चल रहा है? कल्प कल्पान्तरों से चल रहा है। कितने सतयुग आये, कितने त्रेता युग आये, कितने द्वापर तथा कलियुग आए, कितने महात्मा, पीर, पैगम्बर तथा अवतार आए? यह सब क्या तमाशा है, क्या लीला है? जब मनुष्य को मालिक की आज्ञा को पता चल जाता है तो उसके अन्तर में जो हाय - हाय करने की यह आदत कि मैं यह हो जाऊँ, वह बन जाऊँ, वह समाप्त हो जाती है। मैंने उस आज्ञा को पहचानने के यह अर्थ समझे हैं। दाता दयाल जी महाराज तथा दूसरे सन्तों का आदि से क्या अभिप्राय है? यह तो वही हो जानते होंगे। मैं आदि को यह समझता हूं कि मैं कौन हूं। मैं एक सुरत हूं, उस अकह, अपार, अगाध, अनामी की अंश हूं, जो मालिक की आज्ञा के अनुसार, इस दुनिया में आई। मैं नहीं तुम भी और सभी उसी की ही आज्ञा से यहाँ आए हैं। कण - कण उसकी आज्ञा का पालन करता है परन्तु हम अज्ञानी उसकी आज्ञा को समझते नहीं। हमें सच्चा गुरु नहीं मिला, सच्चा भेद नहीं मिला, इसलिए हम इस जगत् में आकर हाय-हाय करते फिरते हैं। हाय मेरा पुत्र, हाय मेरा देश आदि - आदि। यह जो हम में हाय-हाय आ गई है, वह ही हमारे दुःख का कारण बनती है।

मैंने क्या समझा कि मैं कौन हूं? मैं चेतन का एक बुलबुला हूं। इस बुलबुले के अन्तर हो तो सोहंग पैदा

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

होता है, उसी में ही मन पैदा होता है।। उसी बुलबुले के अन्दर सुमिरन, ध्यान तथा भजन पैदा होते हैं। इसी में ही मेरी सारी दुनिया बसती है, तुम्हारी दुनिया बसती है और सबकी दुनिया बसती है, जो चेतन के बुलबुले में खेलती है। तुम चेतन के बुलबुले को सत्संग में जा कर, सारतत्त्व को समझ कर, जब तक मालिक की मौज है, उसकी आज्ञा के आधीन रहते हुए, अपने बुलबुले को जो मान बोध है उनको सुमिरन, ध्यान भजन और सत्संग के द्वारा सुखदायक बना सकते हो। हमको चाहिए कि हम पहले अपने जीवन को बनायें। यदि तुम दूसरों की कुछ सहायता करना चाहते हो तो यही करो कि उनको मालिक की आज्ञा के पहचानने का मारग बतलाओ।

हुक्मे हुक्मी चलना, नानक लिखिया नाल।

आप लोग रोचक तथा भयानक दोनों प्रकार की बातें सुन - 2 कर उनसे प्रभावित हो कर, सच्चाई को न समझ कर, मूर्ख बन कर लुटे जा रहे हो। गुरु तुमको मर्म बताता है, भेद बताता है। दाता दयाल जी महाराज कहते हैं:--

आदि अन्त के मरम को,
सतसंग में पाया।
खुली आँख तब तत्त्व पद,
दृष्टि में आया॥

हम वहाँ से मालिक की आज्ञा के क्रम में यहाँ आए हैं। अब आ ही गए, तो क्या करना चाहिए? सत्संग में बैठ कर गुरु के वचनों को सुनो और अपने

आपको पहचानने की कोशिश करो। मनुष्य सहारा चाहता है, गुरु का सहारा लो। असलियत को पहचानो। मैंने आपको पहले भी बताया था अब फिर बता रहा हूं कि संसार भयानक तथा रोचक बातों को अधिक पसन्द करता है, यथार्थ और सच्ची बातों में रुचि नहीं रखते। यदि कोई साधु महात्मा या सन्त या कोई भी व्यक्ति कोई चमत्कारी घटना कर दे तो दुनिया वाले पागलों की तरह उसके पीछे-2 घूमने लगते हैं। किसी समाचारपत्र में निकला कि एक स्त्री को कई दिनों से एक साँप लिपटा हुआ है। बस, फिर क्या था उस स्त्री को देखने के लिए लोगों का जमघट लग गया। धर्म-सम्प्रदाय वालों ने रोचक या भयानक बातें जब कह दीं, लोग उन्मत्त होकर उनके पीछे-2 घूमने लगते हैं।

लोग कहते हैं कि बाहर का गुरु सुरत चढ़ा देता है। चढ़ा देता होगा परन्तु चढ़ाता किस को है। उसको जिसका विश्वास पक्का होता है। एक बार मैं सन्त कृपाल सिंह के आश्रम में गया। वह अकेले बैठे थे मैंने उनसे पूछा, "क्या आप सुरत चढ़ाते हैं? मेरा अनुभव तो इसके उल्टा है।" मैंने उन्हें फिर कहा, भोलानाथ नाम का एक व्यक्ति बाबा जैमलसिंह का सत्संगी, हजूर बाबा सावन सिंह जी का गुरु भाई मेरे पास फ़रीदपुर आया। मैं डयूटी पर गया हुआ था। भोलानाथ की लड़की अम्बाला में चीफ़ बुकिंग कलर्क को ब्याही हुई थी। उसने मेरा सत्संग सुना, प्रभावित हुई। जब उसके बाप भोलानाथ ने लड़की को यह कहा कि उसका इतने अभ्यास के बाद भी न तो प्रकाश खुलता है न शब्द। तब उसकी लड़की ने अपने पिता को मेरे पास भेजा। वह मुझे फिरोज़पुर मिलने चला आया और अपना इतिहास बता दिया। मैंने उससे पूछा कि क्या उसका ब्रह्मचर्य

कायम है। वह बोला कि उसकी स्त्री को मरे लगभग बीस वर्ष हो गए। दस वर्ष तक वह भटकता रहा, ब्रह्मचर्य को कायम नहीं रख सका, परन्तु पिछले दस वर्षों से उसका ब्रह्मचर्य कायम है। मैं बोला, "अच्छा मैं अभी अभ्यास में बैठ रहा हूं तुम भी बैठ जाओ। हम दोनों अभ्यास में बैठ गये। एक घन्टे के बाद जब वह समाधि से उठा तो नाचने लगा बोला, "अहा! मेरा तो प्रकाश भी खुल गया शब्द भी खुल गया।" मैं पण्डित बलीराम हकीम के मकान में रह रहा था। वह उस समय वहीं थे भोलानाथ की बात को सुनते ही मेरे साथ लड़ने लगे और बोले, "वाह पण्डित जी! हम आपको घर में रखते हैं, आपकी सेवा करते हैं हमारा तो शब्द और प्रकाश आपने वर्षों में नहीं खोला और भोलानाथ आज आया और आपने उसका शब्द तथा प्रकाश आज ही खोल दिया।" ऐ मेरे प्यारे सत्संगियो! आप मेरे इष्ट हैं मैं आपको सच्च कह रहा हूं कि मैंने उस व्यक्ति को कुछ फूंक नहीं मारी, कुछ भी नहीं किया। जब मैं अभ्यास कर रहा था तो मुझे तो याद भी नहीं रहा कि भोलानाथ भी मेरे साथ बैठा हुआ अभ्यास कर रहा है। यह क्या भेद है? मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि सुरतें तो उनकी चढ़ती हैं जिनका विश्वास पक्का होता है। जिनका विश्वास दृढ़ नहीं उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। जो कुछ भी किसी को प्राप्त होता है, वह उसके अपने ही विश्वास तथा श्रद्धा ही के कारण मिलता है। गुरु के पास तो शुभ कामना होती है, वह चाहता है कि जो व्यक्ति जिस मनोकामना को ले कर आए, उसकी वह मनोकामना पूरी हो जाय। मेरे पास कम से कम 150 स्त्रियां ऐसी आईं जिनको महावारी ही नहीं आती थी। मेरे प्रसाद से उन्हें लड़के हो गए। नन्दूसिंह जी महाराज मेरे गुरु भाई हैं।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

उनके हज़ारों चेले हैं। एक बार वह अपनी लड़की के साथ मुझे मिलने आए और बोले कि उनकी लड़की के कोई भी सन्तान नहीं है। संयोग की बात कि मेरे पास एक सेब पड़ा था। मैंने उस सेब को उठा कर नन्दू भाई जी की लड़की को दे दिया। अगले साल जब मैं नन्दू भाई के पास गया तो लड़की की गोद में लड़का था। नन्दू भाई के प्रसाद से उनकी लड़की का बच्चा क्यों नहीं हुआ? क्योंकि वह नन्दू भाई को अपना बाप समझती थी।

मनुष्य ने अपने आपको ही नहीं खोजा, मालिक की खोज का तो कोई अन्त ही नहीं। वह तो अनन्त है। ऋषि मुनि, पैगम्बर सन्त और अवतार तक भी उसका अन्त नहीं पा सके। यदि तुम सुमिरन, ध्यान और भजन करते रहो, अपनी नीयत को शुद्ध रखो अपना विश्वास दृढ़ रखो तुम जीवन में सुखी रहोगे। बात अब मेरी समझ में आ गई है। मैं अब अपने आपको खुदा नहीं कहता और न ही अकाल पुरुष कहता हूं। मैं तो अपने आपको उसका अंश कहता हूं। हमारा आदि घर वह है जहां हमने वापिस जाना है।

सत्संग परमसंत हजूर मानव दयाल जी महाराज, मोदीनगर

30-9-84

सन्तमत और सनातन धर्म

जिनको चाह राम की साधु राम उन्हें मिल जाते हैं।
राम दास के पास राम है, और नहीं कोई पाते हैं।
वाद विवाद में राम नहीं है, राम न पूछा पेखी में।
रामदास ने राम को पाया, सहज ही देखा देखी में।।
राम नहीं तीरथ में रहते, राम बरत के साथ नहीं।
राम दास के हाथ राम है, औरों के वह हाथ नहीं।।
बून्द में सिन्धु सिन्धु में बून्दें, बून्द सिन्धु दोऊ एक हुए।
बून्द सिन्धु का झगड़ा मन में, उनके लिए अनेक हुए।।
राधास्वामी सतगुरु आये, भेद दिया पूरा पूरा।
जो कोई भेद भाव को मेटे, सतगुरु का सेवक सूरा।।

राधास्वामी !

मेरी अपनी आत्मा के स्वरूप भाई और बहनों, आज मेरे यहां के दो-दिन के प्रोग्राम में यह पहला सत्संग है। इस

सत्संग को आरम्भ करने के लिए मैंने जो शब्द सावित्री बहन से पढ़वाया है उसका खास महत्त्व है। क्योंकि एक तो यह राम की व्याख्या करता है दूसरे यह जानने की ज़रूरत है कि मनुष्य क्या है? उसे राम की चाह है या नहीं और यदि राम की चाह है तो उसे उस चाह को ज़रूर पूरा करना चाहिए। राम क्या है? साकार राम तो आप स्वयं मनुष्य के रूप में बैठे हुए हैं। मैंने उपनिषदों से एक मंगलाचरण आपके सामने रखा। राम के बारे में, मनुष्य के स्वरूप के बारे में, उपनिषद् क्या कह रहे हैं? हमारी जो संस्कृति है जिसे हम गलती से हिन्दु संस्कृति कहते हैं वह विश्वव्यापी संस्कृति है। यह भारत जो आप देख रहे हैं यह चक्रवर्ती विशाल भारत था। अगर आपने महाभारत पढ़ी है तो आपको इतना तो अवश्य ही मालूम होगा कि धृष्टराष्ट्र का विवाह गन्धार की राजकुमारी गान्धारी से हुआ जिसको कन्धार कहते हैं। राम के समय में भी चक्रवर्त्ती राज्य था। चक्रवर्त्ती का मतलब है जिसका सारी पृथ्वी के चारों ओर राज्य हो। यह सब बात काल्पनिक नहीं है तथ्यात्मक है, सच्चाई पर आधारित है, इतिहास पर आधारित है। यह संस्कृति सारे विश्व के केन्द्र की संस्कृति थी और कुछ बात है इस संस्कृति में जो अभी तक जीवित है। इक़बाल साहिब के कुछ शेर आपने सुने होंगे :---

मज़हब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा।
ए वादिये गंगा वो दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा।

यूनान मिश्र रोमा सब मिट गये जहाँ से।
लेकिन अभी है बाकी नामो निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन सारा जहाँ हमारा।

इकबाल साहिब कट्टर मुसलमान थे लेकिन सच्चाई उन्होंने भी बयान की है। यह संस्कृति, यह धर्म हिन्दु धर्म या संस्कृति नहीं है। हिन्दु शब्द आपको वेदों में, उपनिषदों में, भगवद्गीता में, रामायण में, किसी पुराण में नहीं मिलेगा। यह संस्कृति अनादिकाल से चली आ रही है, यह सनातन संस्कृति है। सनातन धर्म पर आधारित है। गीता में लिखा है :---

एष धर्मः सनातनः।

यह धर्म सनातन है।

यह संस्कृति धर्म इतना सच्चा है, इतना व्यापक है कि यदि आप उसके एक अंश पर भी अमल करेंगे तो आपको कितने भी खतरे का भय क्यों न हो आप उससे बच जायेंगे। कुछ बात तो है जो हमारी हस्ती मिटती नहीं है। हमने भी देखा है कि जब - 2 भारत पर अधिक संकट आया तब - २ वह और अधिक ज्यादा चमकता गया हालांकि अमेरिका या बड़े - 2 देश नहीं चाहते कि भारत पनपे लेकिन भारत पनपेगा। अमेरिका में भारत के बारे में बिल्कुल ग़लत धारणा है। भारत के योग के प्रति कुछ लोगों में जिज्ञासा है। मैंने 17 साल अमेरिका में पढ़ाया है और भारत की असली तस्वीर सामने रखने की कोशिश की है जिसके फलस्वरूप

विश्वविद्यालयों में अब परिवर्तन हो रहा है। मैं ऐसे खानदान में पैदा हुआ जहाँ चारों तरफ धर्म और दर्शन था। मेरे पिता जी बहुत उत्कृष्ट अध्यापक थे। वह गीता के श्लोक रोज़ाना पढ़ते थे तथा मुझे पढ़ाते थे। मेरे ताऊ जी बड़े भारी ज्योतिषाचार्य थे लेकिन बड़े कर्मठ तथा बड़े इष्ट वाले थे। वह सुबह तीन बजे से लेकर 6 बजे तक अपने इष्ट के ध्यान में रहते थे। वैसे ही संस्कार मेरे थे। मुझे राम की चाह बचपन से थी शायद पिछले जन्म के संस्कार भी हो सकते हैं। पाँच साल की उमर से ही राम के साथ रोज़ाना मेरा योग होता था। व्यवसाय से मैं अध्यापक था मालिक की बड़ी दया थी कि मुझे दर्शन शास्त्र पढ़ाने को मिला। दर्शन शास्त्र में क्या पढ़ाया जाता है ?---मनुष्य का स्वरूप क्या है ? मालिक का स्वरूप क्या है ? हमारा उद्देश्य क्या है ? मालिक से कैसे मिला जा सकता है ? अमेरिका में मैंने दर्शन शास्त्र के साथ-2 अन्य सभी धर्मों को पढ़ाया। अध्यापक की यह विशेषता है कि वह जीवनभर छात्र रहता है, अध्ययन करता है इसलिए वह विचारों से भी युवा रहता है और चाहे तो शरीर से भी युवा रह सकता है।

संसार में मनुष्य इसलिए आया है कि जिस मालिक ने यह जगत् चलाया है जो कण-कण में व्याप्त है, जो सब जगह मौजूद है उसको ढूंढें तथा उसको मिलें और उसी के साथ प्यार करें। लोग कहते हैं कि उसने यह जगत् क्यों बनाया ? उसने यह जगत् इसलिए बनाया कि उस परम-तत्त्व के अन्दर, उस सर्वाधार के अन्दर एक उमंग आये,

एक लहर आये और उसके अन्दर जो एक शक्ति थी वह बाहर निकले इसलिए उसने एक लहर से कोटि-2 ब्रह्माण्डों की रचना की तथा उसके अपने पुत्र स्वयं आप और मैं उससे निकल कर इस जगत् में आए लेकिन हमने इस जगत् में आकर उसका अनुभव करने की कोशिश नहीं की, न यह जानने की कोशिश की कि उसने जो मंडलाकार बनाये हैं वह क्या हैं ?

अखंडमन्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पद दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

मैंने इस मंगलाचरण में गुरु को नमस्कार किया । यह पर शरीरधारी गुरु को नमस्कार नहीं किया है । यहाँ पर गुरु का मतलब है जो सबका आधार है, ब्रह्माण्डों का आधार है, देवताओं का आधार है, अवतारों का आधार है, जिसके बाद में कोई चीज़ नहीं रहती है उसका नाम गुरु है । मैंने इसी गुरु को अपने मन्त्र में नमस्कार किया ।

गुरु देव जगद् व्याप्तम्

गुरु की दैवी शक्ति, दैवी ताक़त क्या है ? गुरु की दैवी शक्ति, ताक़त है उसका प्रकाश और वह प्रकाश जो अन्धकार में भी रहता है, देवी-देवताओं के पीछे लगा रहता है । आप देखोगे कि जितने भी पैगम्बर हैं उन सबके पीछे प्रकाश लगा रहता है । मैं आपको बता रहा था :---

गुरु देव जगद् व्याप्तम्

जगत् क्या है ? जो चलता रहता है, लगातार बदलता रहता है वह जगत् है । पृथ्वी, सौरमंडल, आकाश, कोटि-2

ब्रह्माण्ड सब जगत् है। इस चलने वाले जगत् के अन्दर काल है तथा इसके बाहर वह दयाल है। काल का मतलब कोई डरावनी चीज़ नहीं है। काल चलता है काल के अन्दर तीनों शक्तियां हैं। (1) जो शक्ति किसी चीज़ को पैदा करती है उसे विश्वसृट् ब्रह्म कहते हैं या ब्रह्मा की शक्ति कहते हैं। (2) पैदा होने वाली चीज़ का पालन-पोषण करने वाली शक्ति, उसकी रक्षा करने वाली ताकत विष्णु तत्त्व है (3) पैदा होने वाली चीज़ को वापिस ले जाने वाली शक्ति को शिव तत्त्व कहते हैं। शिव को संहारकर्ता भी कहते हैं 'ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकम्'। शिवकल्याणकारी हैं। जहाँ से यह जगत् निकला था वहां प्रकाश है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड प्रकाशमय हैं :---

मनोभूतकोटिप्रकाशस्वरूपम्।

यह तीनों ताकतें जगत् के अन्दर हैं। पैदा होना, आगे बढ़ना और फिर कारण शरीर में प्रकाश के अन्दर विलीन हो जाना। जगत् ऐसे ही चला आ रहा है, चलता रहेगा। निकला, प्रसारित हुआ, फैला और फिर वापिस चला गया। गुरु देव जगद् व्याप्तम्। गुरु की दैवी शक्ति, प्रकाशमय शक्ति, ब्रह्मा-विष्णु-शिव सारे जगत् में फैली हुई है। गुरु के इस रूप को काल का रूप कहते हैं। काल का अर्थ है समय के अन्दर। यह उभरता है, उठता है और फिर विलीन हो जाता है। भगवद्गीता में कृष्ण ने कहा है कि "यह जगत् मेरी माया से, योगमाया से, महामाया से, पैदा होता है" माया का सिर्फ यह मतलब नहीं कि दुनिया कुछ नहीं है।

महामाया से योगमाया ***Positive*** है, वह शक्ति है जिसको व्यक्त करते हैं। जब वह व्यक्त होती है उस समय संसार का विकास होता है, जब वह सिमट जाती है उस समय संसार में प्रलय होती है। तो महामाया की शक्ति के यह तीन रूप हुए। इस जगत् के अन्दर तीन गुण हैं। इस जगत् की सीमा है जो खुद अपने आप में असीम है लेकिन उसने अपने आपको सीमित कर लिया। वह तो अनन्त है। उसने एक धार को ब्रह्मा, विष्णु, शिव में सीमित कर दिया। सीमित वही कर सकता है जो असीम है। यही एक विशेषता है।

मैंने आपको बताया कि मनुष्य अपने आप में पूर्ण है। परमतत्त्व ब्रह्मा, विष्णु, शिव के रूप में सीमित है।

"गुरोः परतरं नहि किंचित्" इसके पार भी है, इससे अधिक भी है क्योंकि यह तो एक बूंद मात्र है।

एक बार अर्जुन और दुर्योधन भगवान् कृष्ण के पास गये। भगवान् कृष्ण ने कहा कि तुम दोनों मेरे पास आये हो। एक तरफ मैं अकेला हूँ और दूसरी तरफ मेरी सारी सम्पत्ति, सेना, जायदाद है। अर्जुन ने कहा, महाराज मैं कुछ नहीं मांगता, मैं आपको मांगता हूं। अर्जुन कृष्ण को गुरु मानता था। भगवान् कृष्ण जब रथवान् बने तो अर्जुन को ध्यान नहीं रहा और उसने कह दिया कि "हे मित्र, दुर्योधन के कहने पर मेरे साथ कौन-2 लड़ने आये हैं, मैं इनको देखना चाहता हूँ।"

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापयमेऽच्युत।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मित्र मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करो। अब भगवान् कृष्ण को आभास हुआ कि इसको अभी तक यह समझ नहीं आया कि मैं कौन हूं ? इसलिए उन्होंने रथ को द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह के सामने खड़ा कर दिया। गीताके पहले अध्याय का बड़ा महत्त्व है 'अर्जुन विषाद योग' उसका नाम है। विषाद होने से, घबराहट होने से, तुरन्त मालिक की चाह पैदा हो जाती है। अर्जुन ने दो गलतियाँ कीं---(1) एक तो भगवान् कृष्ण को अच्युत कह दिया। (2) दूसरे अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से कहा कि महाराज युद्ध तो बहुत ख़राब है, जब युद्ध में मर जाते हैं तो स्त्रियां दुष्ट हो जाती हैं। स्त्रियों के दुष्ट होने से वर्णसंकर पैदा होता है। हमने सुना है कि वेद कहते हैं कि वर्णसंकर से हमारे पितर नरक में जाते हैं। भगवान् कृष्ण ने सोचा कि इस मूर्ख को वेदों पर सन्देह हो रहा है। इसको पता नहीं कि वेद क्या चीज़ हैं ? भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को वेद की निन्दा करने पर प्रतारणा दी, उसको गाली दी और कहा कि अरे ! तुम निन्दा कर रहे हो, तू ऐसी बातें कर रहा है जैसी अनाड़ी लोग करते हैं, गिरे हुए लोग करते हैं। तू गिरा हुआ है, बिलकुल ग़लत है। ऐसी बात करने से तू नरक में जायेगा, तेरी कीर्ति चली जायेगी। अर्जुन को समझा कर फिर कहा कि बात तो तू विद्वानों जैसी कर रहा है लेकिन तू उस चीज़ की चिन्ता कर रहा है जिस चीज़ की चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि तू समझ रहा है कि मैं इनको मार दूंगा। आत्मा न मरती है न उसे कोई

मार सकता है। आत्मा अमर है। लेकिन जब अर्जुन को ज्ञान नहीं हुआ तो उसको अपना विराट् रूप दिखाया। जब विराट् रूप दिखाने पर भी ज्ञान नहीं हुआ तब भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को भक्ति मारग बताया।

दूसरे लोग समझते हैं कि गीता वेदों का विरोध करती है लेकिन गीता वेदों का विरोध नहीं करती। एक जगह आता है :---

त्रैगुण्यविषया वेदा:।

यहाँ वेद का मतलब है यह त्रिगुणात्मक जगत् शरीर, मन और आत्मा लेकिन आत्मा से परे विशुद्ध आत्मा। वेद सभी धर्मों के, दर्शन के आधार हैं, चाहे वह सन्तमत है, चाहे आर्यसमाज है, चाहे विवेकानन्द का वेदान्तवाद है। कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है जो वेदों का उल्लंघन करता हो। छ: दर्शन हैं--न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। यह छ: दर्शन आपस में तो मतभेद रखते हैं लेकिन सभी दर्शन वेदों को प्रमाण मानते हैं। वेद नाम है ज्ञान का। वेदों के अन्दर हर प्रकार का ज्ञान है। यदि गीता को वेदों की दृष्टि से पढ़ा जाये तो उसमें आपको विरोध दिखाई नहीं पड़ेगा। गीता के अन्दर वेदों का सारा का सारा तत्त्व है इसलिए भक्ति मारग वाले कहते हैं कि गीता भक्ति मारग बताती है, जो वेदान्ती हैं वह कहते हैं कि यह ज्ञान मारग बताती है।

जो कर्मकाण्डी हैं, कर्म पर चलते हैं वह कहते हैं कि यह हमें कर्ममारग बताती है। मालिक का स्वरूप अपने आप

में पूर्ण है, हम सब उस मालिक में से निकले हैं इसलिए मनुष्य का स्वरूप भी अपने आप में पूर्ण है। मालिक का स्वरूप क्या है? मालिक का स्वरूप है कि अपने आपके अन्दर उसकी अपनी जो परावस्था है उस अवस्था में वह जगत् से बाहर है। उसको एक धारमात्र ने सारे जगत् को पैदा किया है। तो इस सच्चाई को गीता में बताया गया है कि परमतत्त्व अपने में पूर्ण है चूँकि मनुष्य अमृत से निकला है इसलिए अमृत का पुत्र है इसलिए वह भी अपने आप में पूर्ण है। वह मालिक से छूटा हुआ है। जैसे उसका शरीर, मन और आत्मा है। उसका शरीर 'ब्रह्मा' विराट् है, उसका मन अव्याकृत 'विष्णु' है, उसकी आत्मा 'शिव' है। वह इन तीनों से परे इनको धारण करने वाला है। इसी तरह से हमारा शरीर है, हमारा मन है और हमारी आत्मा है। मैं आत्मा से परे की बात कर रहा हूँ। यहाँ आत्मा का मतलब वह कारण शरीर जो प्रकाशमय, ज्योतिर्मय है, जो शरीर के नष्ट होने पर भी रहता है, मन के बदलने पर भी रहता है और फिर ऊपर जाकर के वापिस आ जाता है। लेकिन वह भी उसका कारण शरीर है जिसका अनुभव हम गहरी नींद में करते हैं, आनन्द की अवस्था में करते हैं। वह भी उसका शरीर है जो अपने आप में उससे ज्यादा है तो शरीर भी व्यापक है। 'अहं ब्रह्मास्मि' यह कहना भी गलत है क्योंकि हम उसके बराबर नहीं हैं, हम उसका अंश जरूर हैं। यह सच्चाई है जो वेदों में है। आपस में जितने भी लड़ने-झगड़ने वाले शास्त्र हैं, षट्दर्शन हैं यह सभी वेदों से निकले हैं

क्योंकि वेदों में मनुष्य का, परमात्मा का, एकत्व का, अनेकत्व का पूर्ण ज्ञान है इसलिए इन सब में मतभेद ज़रूर है लेकिन यह सब उसी तत्त्व की व्याख्या करते हैं। यह आत्मसन्तति वेदों से, ऋषियों से चली आ रही है इसलिए यह ऋषि परम्परा है। यदि इसको हम ऋषि परम्परा कहें, सनातन धर्म कहें, सनातन संस्कृति कहें तो सबसे अच्छी बात है। इससे बहुत सी ग़लतफ़हमी दूर हो जायेगी।

मैं आपको बता रहा था कि आपके सामने जो शब्द पढ़ा गया उसका एक ख़ास महत्त्व है। इस शब्द के अन्त में एक कड़ी आती है :--

राधास्वामी सद्गुरु आये,
भेद दिया पूरा पूरा।
जो कोई भेद भाव को मेटे,
सतगुरु का सेवक सूरा ।।

इस शब्द में राधास्वामी शब्द आया है। राधा क्या है ? स्वामी क्या है, सद्गुरु क्या है ? मैं इसकी व्याख्या करना चाहता हूँ। राधा परमतत्त्व की धार है, शक्ति है, फैलाव है, जगत् है। स्वामी उसका आधार है इसलिए उसे परमतत्त्व और जगदाधार कहा जाता है। उसे परात्पर ब्रह्म भी कहा जाता है। वह यज्ञ से परे है। जगत् या धार मन है।

मन जो ब्रह्म है, फैलता है। यह ब्रह्म ही जगत् को बनाने वाला है। इस जगत् के अन्दर सत्यम् है, सुन्दरम् है और शिवम् है। माया नहीं है, झूठ नहीं है :--

नाम रूप दोऊ ईशउपाधि।
अकथ अगाध अनन्त अनादि ।।

यदि मालिक इस जगत् को नहीं फैलाता तो हम आते ही क्यों ? हम उसका अंश होकर कैसे कह सकते हैं कि मालिक का क्या मतलब है ? यह कहना बड़ी भारी भूल होगी कि यह जगत् मिथ्या है, माया है। यह वाचक वेदान्ती का अधूरा ज्ञान है। वेदान्ती का यह कहना सही है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सत्, चित्, आनन्द पूर्ण नहीं हैं परमतत्त्व इससे भी परे है। लेकिन यह जगत् अपने आद में पूरी तरह पूर्ण भी नहीं है और पूरी तरह अपूर्ण भी नहीं है। एक तरफ़ तो हमें पता चलता है कि यह जगत् सीमित है दूसरी तरफ यह असीम से निकला है और यह दोनों चीजें मनुष्य के अन्दर मौजूद हैं। इस सच्चाई का ज्ञान प्राप्त करने की ज़रूरत है कि यह जगत् सुन्दर है। आपने पृथ्वी से सितारों को देखा है यदि आप चन्द्रमा पर जाकर देखें तो यह सारा जगत् बहुत सुन्दर दिखाई देगा जो इस बात का प्रमाण देता है कि इसको बनाने वाला सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् तीनों का समन्वय ज़रूर होगा। अमेरिका ने जैट वायुयान को चन्द्रमा पर भेजा। वह चन्द्रमा तक तो नहीं जा सका लेकिन जब वह अन्तरिक्ष में उतरा तो विमान-चालक बाहर निकला। उसने ऊपर, नीचे देखा तो हमारी आकाशगंगा के बड़े सुन्दर-2 चित्र दिखाई दिए। उसने चिल्लाकर कहा कि यह जगत् कितना सुन्दर है। जगत् राधा है। राधा लक्ष्मी है। वह सुन्दर है। इस जगत के अन्दर हम परलोक से आये हैं। यह जगत् हमारा लोक है। राधा शब्द धुनात्मक है। दो प्रकार के शब्द होते हैं

(1) धुनात्मक (2) वर्णात्मक। मैं ताजमहल शब्द बोलता हूँ यह वर्णात्मक है। यदि ताजमहल आपने नहीं देखा है तो मैं बता सकता हूँ कि ताजमहल की चार मीनारें हैं वह संगमरमर का है। ताजमहल की तस्वीर भी दिखा सकता हूँ। जब आप स्वयं जाकर देखेंगे तो कहेंगे कि वैसा ही है जैसा वर्णन किया गया था। वर्णात्मक शब्द वह होता है जिसका मनुष्य स्वयं वर्णन करता है और उसका मतलब बताता है। लेकिन कुछ शब्द ऐसे हैं जिनको आप ***Sound words*** कहते हैं या धुनात्मक शब्द कहते हैं। उसकी आवाज सुनते ही आपको उसका नाम याद आ जाता है। 'ॐ' भी धुनात्मक है। 'सोहम्' भी धुनात्मक है। 'राधा' भी धुनात्मक है। राधा शब्द नहीं है असल में वह धार आई हुई है जिस धार से हम आए हैं। हम समुद्र की बूंदें हैं। जो धार नीचे आई उस धार को सन्त लोग धारा कहते हैं। मैं धारा बोल रहा हूँ और आपके सामने धार की तस्वीर आ रही है क्योंकि धार अशब्द है। उसका मतलब है माया, प्रकृति, सौन्दर्य, जगत्, सौर्यमंडल, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिसके आनन्द भोगने के लिए आत्मा नीचे आती है। इस जगत् में आनन्द है :--

ईशावास्यमिदं सर्वम्

यदि आप इस जगत् में रोने-पीटने के लिए आये हैं तो रोते रहोगे और यदि आप यह समझोगे कि आनन्दकन्द परमतत्त्व का ही यह सारा पसारा है जिसमें वह आनन्द ले रहा है आप भी आनन्द लो। धारा से हम नीचे आये हैं।

धारा का मतलब यह लोक है, धारा का मतलब अगत् है, धारा का मतलब मूल प्रकृति है और धारा का मतलब वह सब कुछ है जो आपको दिखाई देता है। जिसके अन्दर आप भी हैं, आपका शरीर भी है, आपका मन भी है और आपकी आत्मा भी है। यह लोक हैं। राधा लोक है और स्वामी परलोक है। स्वामी इन तीनों से न्यारा हैं। मैंने परमतत्त्व आधार पंडित फ़कीरचन्द जी महाराज को देखा हैं, वह वास्तव में परमतत्त्व के अवतार थे। उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि आप अपना धर्म छोड़कर मानवता मन्दिर में आओ तब हम शिष्य बनायेंगे। उन्होंने सच्चाई बयान की। उनका रूप लोगों को सब जगह प्रकट होता था और वह कहते थे कि मैं नहीं होता। उन्होंने बताया कि जिस रूप में तुम मालिक को देखते हो, विचार करते हो वही रूप तुम्हारे सामने प्रकट हो जाता है। तुम यह नहीं समझते हो कि यह रूप तो अंशमात्र है, बूंद मात्र है। वह तो इससे परे है। इसलिए मज़हबों में झगड़े होते हैं। अपने आपको हिन्दु अलग समझते हैं, मुसलमान अलग समझते हैं। सब अधूरे हैं। सब काल के चक्कर में हैं। परमदयाल जी महाराज के गुरु ने जब उनको देखा तो देखते ही कहा :--

रूप तेरा अति प्यारा फ़कीरा,
रूप तेरा अति प्यारा।
तू है सत् चित् आनन्द मूरत,
तू तीनों से न्यारा---फ़कीरा।

महर्षि शिवव्रत लालजी महाराज उत्तर-प्रदेश के थे।

उन्होंने कहा कि मैं गौतम बुद्ध का अवतार हूँ। उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए कुछ नहीं कहा। उन्होंने 5 हज़ार पुस्तकें लिखीं। जिनमें वेदों पर, उपनिषदों पर, हिन्दु संस्कृति पर भी लिखीं। उन्होंने कहा कि विश्व के जितने भी धर्म हैं वह सब हिन्दु धर्म के असल और नकल हैं। हिन्दु धर्म के अंश हैं। उनको परमदयाल जी जैसे शिष्य मिले। परमदयाल जी महाराज आठवीं कक्षा तक पढ़े हुए थे लेकिन उन्होंने जो अनुभव किया वह वेद, उपनिषद, गीता, रामायण और ऋषियों की जितनी भी खोज है उसके साथ मेल खा जाता था। जब मैं कहता था कि महाराज यह बात तो गीता में है तो कहते थे कि भई मुझे तो पता नहीं। उनको फ़कीर कहा गया है। फ़कीर कौन होता है? जो शरीर से, मन से और आत्मा से परे हो जाता है। फ़कीर पारब्रह्म परमतत्त्व ज्ञानी है। परमतत्त्व में जो हर वक्त रहता है वह फ़कीर है।

हद से टपे तो औलिया,
बेहद टपे तो पीर।
हद बेहद दोनों टपे,
ताको कहें फ़कीर॥

हद क्या है? शरीर की हद। शरीर के पीछे मानसिक शक्ति है। यह सिद्धियाँ मन तक रह जाती हैं। मन की शक्ति के लिए किसी गुरु, राम, कृष्ण के रूप को दोनों भौंहों के बीच में बना लो आपका मन ब्रह्मान्डी मन से जुड़ कर शक्ति देगा और आपकी इच्छाएं पूरी हो जायेंगी "हद से टपे तो औलिया" जो मन की शक्ति तक पहुँच गया वह किसी को हाथ लगायेगा उसकी बीमारी दूर हो जायेगी। वह आपको सद्भावना देगा आपका काम बन जायेगा। जो

शरीर से परे हो गया वह औलिया है। 'बेहद टपे तो 'पीर' इसके बाद मन से परे हो जाता है और वह आत्मा के क्षेत्र में जाता है। प्रकाश में रहता है। "हद बेहद दोनों टपे उसको कहें फ़कीर" जो आत्मा से भी परे चला जाए, परमतत्त्वमय हो जाये, स्वयं परमतत्त्व हो जाए वह सद्गुरु है। उसी को फ़कीर कहते हैं। फ़कीर इन तीनों दर्जों से उठकर चौथे के अन्दर मिला हुआ है और जाग्रत अवस्था में भी उसके साथ मिला हुआ है इसलिए उसको फ़कीर कहते हैं।

यह आप पर भी लागू होता है। आपके अन्दर सत्, चित्, आनन्द है। शरीर सत् है, मन चित् है, आत्मा आनन्द है। जाग्रत सत् की अवस्था है, स्वप्न चित् की अवस्था है, सुषुप्ति आनन्द की अवस्था है लेकिन ये अवस्थाएं काल में हैं। यह आती और जाती हैं। लेकिन इसके पीछे जो तत्त्व है जो इन अवस्थाओं का अनुभव करता है वह हमेशा रहता है। उसी का नाम अविनाशी तत्त्व है। वही आपका असली रूप है। इस सच्चाई को परमदयाल जी महाराज ने बड़े सरल तरीक़े से बयान किया। उन्हें राम की तलाश थी। राम की तलाश हरएक को है लेकिन समझ नहीं रहे कि किस राम की तलाश है। जो मनुष्य अपने शरीर को बनाना चाहता है बनाए क्योंकि शरीर भी तो ब्रह्मा है वह भी तो राम का रूप है। पहले शरीर को स्वस्थ रखना ज़रूरी है। इसलिए हमारे यहां शरीर को पुष्ट रखने के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम है। जिसने ब्रह्मचर्य आश्रम को निभाया है वह सौ साल तक जियेगा। यदि आपके अन्दर

ब्रह्मा की शक्ति है, सृजन करने वाली या पैदा करने वाली शक्ति है तो आपका शरीर पुष्ट रहेगा। वीर्य की शक्ति को मजबूत बनाए रखने के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम था। परमदयाल जी महाराज ने एक बात बहुत अच्छी बताई कि हमारी जो ऋषि आदि परमपरा थी उसमें ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम थे। पहले आश्रम में 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके अपने शरीर को पुष्ट रखो, जिससे धन कमाने योग्य हो सको। इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम शरीर को पुष्ट रखने तथा अर्थ कमाने के लिए हुआ। गृहस्थ आश्रम काम की तृप्ति के लिए, आनन्द के लिए, प्रेम के लिए और कामना के लिए है। काम का मतलब सिर्फ पति-पत्नी का सम्बन्ध नहीं है--

काम - काम सब कोई कहे काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कामना काम कहावे सोय॥

यदि आपने गृहस्थ जीवन व्यतीत नहीं किया, मनुष्य से प्यार नहीं किया, बच्चों से प्यार नहीं किया, मां-बाप से प्यार नहीं किया उसको राम नहीं मिल सकता है। तीसरी अवस्था वानप्रस्थ की है। वानप्रस्थ अवस्था क्या है? इस अवस्था में सारा काम बच्चों पर छोड़ कर सारा समय परहित में लगाना। यदि हमें बुद्धि का विकास करना है तो हमें परहित करना चाहिए। जो परहित नहीं करता उसकी बुद्धि का विकास नहीं होता है। जब आप इन तीनों से गुज़र जाओगे तब आप 75 वर्ष की आयु में संन्यास आश्रम में आओगे और भगवान् के

भजन में लगोगे। इस प्रकार हमारी कितनी व्यवस्थित आर्ष संस्कृति है। हिन्दु संस्कृति में सत्, चित्, आनन्द मूरत भी कहा गया और इन तीनों से न्यारा भी कहा गया है। राम की चाह के साथ-2 शरीर की भी चाह होनी चाहिए। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अच्छा भोजन होना चाहिए। यदि आपने ब्रह्मचर्य का पालन किया है तब गृहस्थ में जो आपके बच्चे होंगे वे आपका विरोध नहीं करेंगे। यह सब वैज्ञानिक है। जैसे विज्ञान में खोज करते हैं और खोज के बाद बताते हैं कि हाइड्रोजन और आक्सीजन को मिलाने से पानी पैदा होता है। इसी प्रकार हमारी जो परम्पराएं हैं वे अन्धविश्वास पर आधारित नहीं है। उन्होंने खोज करने के बाद बताया कि ब्रह्मचर्य रखने से यह परिणाम होगा।

परमदयाल जी महाराज ने एक सच्चाई और बयान की। उन्होंने बताया कि ज्यादातर लोगों को राम की चाह होती है लेकिन उनको कोई अनुभव नहीं होता है उसका कारण है कि जिसने छोटी उमर से ब्रह्मचर्य गिरा दिया उसका एक तो शरीर पुष्ट नहीं रहेगा दूसरे उसके अन्दर प्रकाश पैदा नहीं होगा। आपको उस राम की चाह है या मन वाले राम की चाह है। आप मन वाला राम भी पैदा कर सकते हैं। अधिकतर लोग मन वाले राम तक ही रह जाते हैं। जितनी भी आप राम, कृष्ण, शिव की मूर्तियां बनाते हैं यह सब आपके ब्रह्माण्डी मन से बनती हैं। ये सभी ब्रह्म को स्वरूप हैं। ब्रह्म तो अपने आप में प्रकाश है। आप जिसको अपना इष्ट मानते हैं उसको पूरा मानो और शब्दमय मानो। अपने आपको उसके सुपुर्द कर दो, जो चाहोगे मिल जायेगा यदि इस राम की चाह है तो। यह

सब मिल जाने से आपको सुख मिलेगा, आपकी इच्छाएं पूरी हो जायेंगी लेकिन आपको आनन्द नहीं मिलेगा। आनन्द वाला जो राम है वह है प्रकाश। वह ब्रह्ममय है जिसके लिए आपको अपने अन्तर में ध्यान लगाना पड़ेगा। तो उस राम की चाह आपको है या उससे भी परे उस राम की चाह आपको है जहाँ पहुँचने के बाद फिर इस जगत् में वापिस नहीं आना पड़ेगा।

सत्संग समाप्त करने से पहले मैं आपको फिर एक बार बताना चाहता हूँ कि राधा का क्या मतलब है ? राधा सत्, चित्, आनन्द का जगत् है चूँकि यह मन की धार है। स्वामी परमतत्त्व का नाम है, परमात्मा का नाम है। हम धारा से नीचे आये हैं। यदि आप अपने अन्दर राधा शब्द कहोगे और अन्तर में ध्यान लगाओगे, राधा से आप वापिस जा रहे हैं और राधा के साथ स्वामी कहने से आप वहाँ जाकर मिल जाओगे। मैं यह बताना चाहता था कि राधास्वामी किसी फ़िरके का नाम नहीं है। राधास्वामी उस हालत का नाम है, उस अवस्था का नाम है जहाँ आपकी आत्मा उस परमतत्त्व से मिल जाती है। शब्द में आया है :---

राधास्वामी सतगुरु आये भेद दिया पूरा पूरा।

सतगुरु का मतलब वही परमतत्त्व जो राम, कृष्ण के रूप में आए, अनेक अवतारों के रूप में आये। हम 10 अवतार तो नहीं मानते। यह सिर्फ़ आपके नमूने के लिए हैं। अवतार चार हैं तो चारों आश्रमों के नमूने हैं। पहला अवतार परशुराम का है। परशुराम ने जीवन भर ब्रह्मचारी रहकर

राम की चाह को पूरा किया। दूसरा राम का अवतार हुआ जो गृहस्थ का अवतार कहलाते हैं। भगवान् राम ने बताया कि एक गृहस्थी होते हुए, एक सच्चा भाई होते हुए, एक सच्चा पति होते हुए और एक सच्चा पुत्र होते हुए किस तरह मालिक की चाह को पूरा किया जा सकता है। तीसरे भगवान् कृष्ण का जो सोलह कला युक्त थे वह वानप्रस्थ का नमूना है वह गृहस्थी भी है, लोक भी है और परलोक भी है, राधास्वामी है और स्वामी भी है। जिसने लोक नहीं बनाया उसका परलोक नहीं बन सकता है। जिस धर्म से, जिस गुरु के ज्ञान से आपका लोक नहीं सुधरा तो आपका परलोक क्या सुधरेगा। राधा नहीं सुधरी तो स्वामी नहीं मिलेगा। कबीर साहिब ने स्पष्ट कह दिया :---

जाका दर्शन इत्त है, वाका दर्शन उत्त।
जाका दर्शन इत्त नहीं, वाका इत्त न उत्त ॥

अगर आपके जीते-जी राम नहीं मिला, आपको राम का अनुभव नहीं हुआ, आप राममय नहीं हुए तो लाख यत्न कर लो आपको मरनें के बाद वह स्थान नहीं मिलेगा जो राम का अनुभव करने के बाद मिलता है। जब जाग्रत अवस्था के अन्दर आपको राधस्वामी अवस्था मिल जायेगी तब निश्चित समझो कि वह स्थान मिल जायेगा। भगवान् कृष्ण ने बताया कि इस जगत् में रहते हुए, सब कुछ करते हुए भी अपने आपको कर्मबन्धन से मुक्त रखो। चौथा अवतार महात्मा बुद्ध का है जो संन्यास आश्रम का नमूना है। उन्होंने शुरू से ही संन्यास ले लिया था जबकि गृहस्थ में

से गुज़रे थे। यह संस्कृति कितनी उत्कृष्ट है।

राम क्या है ? राम शरीर भी है, राम मन भी है, राम शव भी है और राम वह आख़िरी अवस्था है जहाँ पहुँचने के बाद जितने भी राम हैं उनका कोई मूल्य नहीं रहता तो यह राम की चाह थी :---

जिनको चाह राम की साधु, राम उन्हें मिल जाते हैं।
रामदास के पास राम हैं, और न कोई पाते हैं।

रामदास कौन है ? रामदास वह है जो आठों पहर, चौबीसों घण्टे राम की तलाश में रहता है, जहां भी देखता है उसी को देखता है। जो कभी किसी हालत में घबराता नहीं है वह रामदास है। इसका मतलब यह नहीं कि आप दुनिया को छोड़ दो लेकिन जहाँ देखो उसी को देखो। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ सब में उसी को देखो और यह सोचो कि जो कुछ कर रहा है वह राम ही कर रहा है। हम सब बड़े भ्रम में हैं कि हमने यह कर लिया, वह कर लिया। आप अपने आप में पूर्ण हो। पूर्ण का मतलब यह नहीं कि आप किसी के आगे झुकें नहीं। झुकने से अहंकार जाता है और अहंकार का पर्दा हटते ही आपको राम मिल जाता है। जो रामदास हो गया वह राममय हो गया। राम हो गया। राम का दास होने से मैं कुछ नहीं हूं, तू कुछ नहीं है, तू राम हो गया। उसके सभी काम राम पूरे करेगा नाम का मतलब भी यही है। नाम का मतलब यह नहीं है कि राम - 2 करते रहो। नाम का मतलब यह है कि जब पूरी

तरह उसी को अपना लिया, सब उसी पर छोड़ दिया :--

"किश्ती खुदा पे छोड़ दे लंगर को तोड़ दे"

जब यह हालत आपकी हो जाती है तब आपको हर जगह राम दिखाई देगा। इसका मतलब यह नहीं कि शैतान आपके सामने आए और आप उसे पूजने लगो। कुछ लोगों में पाशविक प्रवृतियाँ होती हैं उनसे व्यवहार अलग करना पड़ता है। यदि किसी ने आपको नुकसान पहुँचाया है तो आप देखोगे कि उस नुकसान में आपकी भलाई है :---

राधास्वामी सतगुरु आए भेद दिया पूरा पूरा।

क्या वह अवतार आए जो रामायण में लिखा है :--
नाना विधि राम अवतारा, रामायण शतकोटि अपारा।

वह राधास्वामी नाम है, राधास्वामी अवस्था है। राधास्वामी सतगुरु का मतलब कि परमतत्त्व बार-2 अवतार लेता है। जब वह मनुष्य के रूप में आता है तो बताता है कि राम की सच्चाई क्या है? भेद क्या है? चूँकि राम एक है वह इन तीनों लोकों से ऊपर चला जाता है, असली राम एकत्व में है। जो एक करने वाला है वह राम है, दयाल है। जो अलग करने वाला है वह काल है। 'राधास्वामी सतगुरु आये, भेद दिया पूरा पूरा' भेद क्या दिया :--

जो कोई भेद भाव को मेटे।
सतगुरु का सेवक सूरा॥

उस परमतत्त्व मालिक का असली सेवक वही है जो अपने आपको उस मालिक से अलग नहीं मानता चूँकि

मालिक उस के अन्दर है वह अलग नहीं है। प्रेममय भक्त वही है जो विभक्त नहीं है। जो अपने आपको अलग समझता है वह कभी भी राम को प्राप्त नहीं कर सकता है। कबीर साहिब ने दूसरे शब्दों में कहा है :---

> कामी तरे क्रोधी तरे पापी तरे अनन्त।
> आन उपासक कृतघन, तरे न नाम रटन्त ।।

कामी अगर काम को मालिक की तरफ लगा देता है, मालिक की चाहना करता है तो वह तर जायेगा। तुलसी दास जी ने कहा है कि जैसे कामी को अपनी प्रेयसी प्यारी है वैसे ही मुझे राम प्यारे हैं। यदि कोई क्रोधी भी है लेकिन उसके अन्दर सद्भावना है उसको भी राम मिल जायेंगे। हर किस्म के पाप करने वाला भी तर जायेगा। "आन उपासक कृतघन" अधिकतर लोग कृतघ्न का यह मतलब समझते हैं कि जो अपने गुरु का सच्चा नहीं है, यह बात भी ठीक है। किसी ने आप पर ऐहसान किया है और आप उसके ऐहसान को नहीं मानते तो आप कृतघ्न हो तब आप नहीं तरोगे। लेकिन 'आन उपासक कृतघन' का यहाँ पर दूसरा मतलब है---दूसरे की उपासना करने वाला कृतघ्न है। दूसरा क्या है ? वह परमतत्त्व आपके अन्दर मौजूद है। यदि आपने अपने आपको उस मालिक से अलग समझ लिया उस मालिक से भेद-भाव कर दिया तब आप नहीं तरोगे। आप पूर्ण हो :---

> जो कोई भेदभाव को मेटे,
> सतगुरु का सेवक सूरा।

जब मैंने मालिक से भेद-भाव हटा दिया तब वह मालिक

का, सतगुरु का पूरा भक्त है। वह सब जगह मौजूद है इसलिए मुझे सबसे प्रेम ही करना चाहिए। जो गुरु या धर्म यह कहता है कि तुम अलग हो, तुम्हारा फ़िरका अलग है, तुम्हारा मज़हब अलग है, तुम्हारा तरीक़ा ग़लत है, तुम दूसरों से अलग हो वह सच्चा सतगुरु नहीं है। जिसको असली अनुभव हो जाता है वह आन उपासक नहीं है, वह मालिक से या दूसरे से अलग नहीं है। इस प्रेममय जीवन को जो व्यतीत करता है उसको राम मिल जाता है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं आपको सच्चे दिल से सद्भावना देता हूं। सभी को राधास्वामी !

आपका फ़कीरमय
मानव

R. S.

पत्र द्वारा सत्संग

प्रतिलिपि पत्र परमपुरुष पूर्णधनी सन्तसद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराजाधिराज का श्री गीतम सिंह, माई थान आगरा वालेको

R. S.

मानवता मन्दिर,
सुतेहरी रोड,
होशियारपुर।
25-6-92

मेरे प्यारे आत्मांश गीतम सिंह,

राधास्वामी परमदयाल जी सहाय।

तुमने परमदयाल जी के सत्संगों से और मेरे सत्संगों से जो उदाहरण दिये हैं, उनका समाधान मैं नीचे कर रहा हूँ।

सब से पहले तुमने लिखा है कि जो गुरु लाउडस्पीकर पर नामदान का उद्घोष करते हैं, वे नामदान को जेब में पड़ी हुइ वस्तु के समान दे देते हैं।

तुम्हें मालुम होना चाहिये कि परमदयाल जी नामदान नहीं देते थे, और लोगों को नामदान के लिए व्यास भेजते

थे। किन्तु उन्होंने मुझे हुक्म दिया कि मैं नाम दान दूं। इसी प्रकार उन्होंने ठाकुर बृजलाल को और दूसरे आचार्यों को भी नामदान देने की आज्ञा दी थी। जब उन्होंने मुझे अपनी जगह पर काम करने के लिए, बावजूद मेरे संकोच के, अपने जीते जी सत्संगों में, उद्घोष के द्वारा तथा लिखित वसीयत के द्वारा, उनकी आज्ञा-पालन का आदेश दिया, तो मुझे नाम दान देने की उनकी आज्ञा का उल्लंघन तो नहीं करना चाहिए। मैं अपने अनुभव के आधार पर तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि 1980 में, जब परमदयाल जी ने एक वाक्य से मेरी सभी शंकाएं दूर कर दीं और मुझे उच्चतम् साक्षी अवस्था का अनुभव करा दिया तो असके बाद मुझे सत्संग देने तथा नामदान देने या समाधि-ध्यान में मग्न होने की आवश्यकता नहीं रही थी, किन्तु 1981 में पिट्सबर्ग के मर्सी हस्पताल में मुझे आखिरी सत्संग में कहा, "तुम्हारी आध्यात्मिक स्थिति चश्मे वहदत की है; तुम्हारी "मैं" नहीं रहीं, लेकिन इससे आगे की अन्तिम अवस्था, जिसमें मैं पहुँच चुका हूँ, तुम्हें तब प्राप्त होगी जब तुम अपना अनुभव बाँट कर सत्संगियों की महान् सेवा करोगे।" इसलिए जब मैं अमेरिका से त्यागपत्र दे कर अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए आया तो मैंने उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। मेरे अनुभव ने यह बताया कि जब झूठे गुरु नाम-दान दे रहे हैं, तो इस सत्य का अनावरण करने वाले डेरे में परमदयाल जी ने नामदान की आज्ञा इसलिए दी कि गुरु के रूप को ही सच्चे गुरु की उपस्थिति मानने के भ्रम को दूर करते हुए भी नाम-दान देकर सत्संगियों के अन्धविश्वास को ज्ञान के विश्वास में बदल दिया जा सकता है।

तुम्हारी सूचना के लिए मैं यह बता देना चाहता हूं कि

मैं आज से नहीं, बल्कि तीस वर्ष पहले से "मैं" शब्द का प्रयोग ही नहीं करना चाहता। लेकिन व्यवहार की दृष्टि से इस शब्द का प्रयोग सभी सन्तों ने किया है। जब कभी सत्संगियों ने मुझ से कहा कि मेरा रूप प्रगट हुआ, या मेरी तस्वीर से शहद टपका, और उज्जैन की शान्ता जैन के पति की पेट की बीमारी को दूर कर दिया, तो मैंने हमेशा स्पष्ट रूप से यह कहा कि यह सब कुछ उनके विश्वास के कारण हुआ, न कि मेरी उपस्थिति या किसी चमत्कारी शक्ति इसकी जिम्मेदार थी। मैंने शान्ता को विशेष कर उस समय, जब उसने मेरे सामने मेरे चित्र से शहद निकाल कर बताया कि उसका अनुभव सच्चा था, यह कहा---"शान्ता तू धन्य है। तूने अपने विश्वास से मेरे चित्र से शहद उत्पन्न करके अपने पति की बदहज़मी दूर कर दी, लेकिन जब मेरा पेट खराब होता है तो मैं तो डाक्टर की दवा लेता हूं। मेरा शहद मुझे तो मदद नहीं करता। जब तुमने मेरी छाया की छाया को इष्ट मान कर यह चमत्कार किया, तो अगर तुम मेरे असली निज स्वरूप, उस साक्षी तत्त्व को इष्ट बना कर भक्ति करोगी तो तुम खुद सोचो कि तुम कहां पर पहुँचोगी !" यह बात सुनकर उसका विश्वास टूटा नहीं, बल्कि वह ज्ञानमय और दृढ़तर हो गया। मेरी शैली अलग है, लेकिन सत्य वही है जो परम दयाल जो के चोले में परम पुरुष ने निरूपित किया।

तुमने परम दयाल जी के सत्संगों को नहीं समझा। अब रहा नामदान का लाउडस्पीकर पर उद्घोष करना। सो आचार्य लालचन्द, जो इस समय ऊंची अवस्था में हैं, सत्संगियों को सूचना देकर बुला लेते हैं और मेरे नामदान

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

देने से पहले उनको नामदान का पूरा मतलब-महत्व बता देते हैं। अगर तुम यह समझ रहे हो कि मैं नामदान दे कर मानवता धर्म का कुनबा बढ़ाना चाह रहा हूं, तो इस भ्रम को भूल जाओ। तुम मेरे सत्संगों को ध्यान से पढ़ो। तुमने परम दयाल जी के शब्दों को 'मनुष्य बनो' से लिया है। उन्होंने जब यह कहा कि शब्द-योग, जिसका उद्देश्य जगत् से उपरामता प्राप्त करके परमधाम पहुंचने का हर एक के बश की बात नहीं है, तो तुम्हें यह भी याद रखना चाहिए कि परम दयाल जी महाराज प्रथम परमसन्त हैं जिन्होंने शब्द योग को भी मंज़िले-मकसूद नहीं माना। वह कहते हैं कि जो साधक या गुरु शब्दाभ्यास से प्रेम करता है, वह भी वीतराग पुरुष नहीं है। जब तक कि शब्द में विलीन होने के बाद, उसकी करनी रहनी में नहीं बदलती, जब तक शब्द व्यापक प्रेम में नहीं बदल जाता, तब तक शब्दाभ्यासी भी याचक योगी है। मैंने इन बारह वर्षों के अनुभव से यह घोषित किया है कि 'शब्द' का अर्थ व्यापक प्रेम है। जिसके अन्दर प्रेम पहले से ही मौजूद है, और उसके प्रेम के कारण उसका मन इष्ट में टिका हुआ है, उसे किसी प्रकार के शब्दाभ्यास की आवश्यकता नहीं। तुमने परम दयाल जी के सत्संगों को नहीं समझा। केवल एक वाक्य को लेकर मेरे उच्चतम सत्संग के साथ भ्रमात्मक तुलना की है। अगर तुम मेरे सामने आकर बैठो और अपनी शंकाओं को बताओ तो तुम्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। मैं चाहता हूं कि मेरे दरबार में, जो वास्तव में परमदयाल जी का दरबार है, पराप्रेम का अनुभव करके हर एक व्यक्ति साक्षी भाव को अनुभव कर सके। तुम्हारी यह धारणा गलत है कि मैं लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार नामदान देता हूं।

हाँ,यह ठीक है कि अगम से जो प्रेम की धारा मेरे माध्यम से सत्संग के रूप में बहती है, उसी के अनुसार सत्संगी पराशब्द और पराप्रेम में निमग्न हो जाते हैं।

तुम्हारा तोसरा 'सत्सनातन धर्म' पुस्तक से लिया गया वाक्य भी मेरे वाक्य की तुलना करने के योग्य नहीं है। मेरे दृष्टिकोण को निरस्त करने के लिए अनुचित है। प्रथम तो तुमने परम दयाल जी के उस वाक्य को नहीं समझा जिसमें उन्होंने गुरु से परामर्श लेने की बात कही है। उन्होंने यह जानते हुए भी कि आम लोग मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं, केवल एक वाक्य से सभी को परम धाम का अधिकारी बना दिया। और वह वाक्य है 'शिव संकल्पमस्तु'। तुम्हें यह नहीं मालुम कि यह 'शिव संकल्पमस्तु' का आदेश किस वेद मंत्र का भाग है। लो मैं तुम्हें यहाँ बताता हूं। वह वेद मंत्र इस प्रकार है :

'यज्जाग्रतो दूरमुदैति तथैवैत
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योति रेकं
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥

यदि मैं इस मन्त्र की पूरी व्याख्या करूं और सन्तमत के सारे रहस्य को इस के द्वारा प्रगट करूँ तो बहुत समय लगेगा। मैंने कुछेक सत्संगों में इसकी व्याख्या की है। किन्तु तुम्हें यहाँ मैं उसका भावार्थ बताए देता हूं। इसके अनुसार, 'वह अविनाशी तत्व जो हर अवस्था में (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुर्यावस्था और शब्द में निमग्न होने की अवस्था) से भी परे उदय हो रहा है, जो अति दूर है और दूरवर्ती ज्योतियों की एक ज्योति है, उसमें मिल जाने के

लिए मेरा शिव संकल्प से ओत-प्रोत हो।'

जब मैं यह देखता हूं कि कुछ सत्संगियों ने शिव संकल्प का अभ्यास किया है और उससे प्रेरित होकर वे नामदान के लिए आते हैं, और इस बात की छान-बीन आचार्य लाल चन्द जी कर लेते हैं, तो मैं उन्हें नामदान देता हूं और उन्हें कहता हूं कि वे अपने अभ्यास की डायरी बना कर मुझ से, या किसी आचार्य से अपने अनुभवों के बारे में परामर्श ले लिया करें।

मेरे प्यारे गौतम सिंह, मैं 1982 में आचार्य लालचन्द जी के गांव दादू में गया। मेरे सत्संग के बाद गांव के सभी लोगों ने नामदान लेने की इच्छा प्रगट की। मैंने यह महसूस किया कि इस गांव के निवासी स्त्री-पुरुष वास्तव में भोले-भाले और शुद्ध हृदय वाले हैं। मैंने गांव के एक सौ पैंतिस स्त्री पुरुषों को 20-20 की टोली में नामदान प्रदान किया और हर एक को अलग-अलग अभ्यास की मुद्रा में बिठा कर स्पर्श दिया। सभी ने प्रकाश और शब्द का अनुभव किया। मैं यह दावा नहीं करता कि मैं चमत्कारी हूं। लेकिन तुम यह भी नहीं कह सकते कि मैं क्रियात्मक नहीं हूं।

परमदयाल जी महाराज कई बार कहा करते थे कि वे सारी संगत को एक साथ सतलोक उठा ले जाने की कोशिश करते थे। मैंने अमेरिका में और उज्जैन के कुम्भ शिविर में यह प्रयोग किया है, और हर सत्संग के बाद सारी संगत को समाधि में बिठाता था। इसके परिणाम बहुत अच्छे

रहे हैं।

तुम्हारा यह कहना, कि परमदयाल जी महाराज के द्वारा चुना गया उनका उत्तराधिकारी अपने सत्गुरु का विरोध कर रहा है, तुम्हारे थोथे विश्वास का प्रमाण है। परमदयाल जी महाराज ने स्वयं असली कलम से 'सिद्ध सत्पुरुष फकीर बाबा चमत्कारों से परे' नामक पुस्तक में अपनी भूमिका में लिखा है, 'मैंने मानव दयाल को सोच-समझ कर यह काम दिया है, और मैंने इसमें भूल नहीं की। जिन परमदयाल जी महाराज ने अपने सद्‌गुरु को नहीं छोड़ा और कह दिया कि चोरी का माल लगने के कारण, दाता! तेरी धाम उजड़ जाएंगी, जिसने अपने पिता को कह दिया कि उनकी रिश्वत की कमाई के कारण वे उनके घर का भोजन नहीं खा सकते, ऐसे सत्य के साक्षात् परम तत्वावतार द्वारा मनोनीत उत्तराधिकारी को इस आधार पर कथनी और करनी में भेद करने वाला कहना निराधार है। यदि तुमने परमदयाल जी महाराज के सत्संगों को समझा होता तो तुम्हें इस बात का अहंकार न होता कि तुमने यह उदाहरण परमदयाल जी की पुस्तकों के गहन अध्ययन से प्रेरित हो कर दिए हैं। अगर तुमने परमदयाल जी के सत्संग के एक वाक्य से भी प्रेरणा लेकर जीवन मुक्त अवस्था का अनुभव किया होता तो तुम इस प्रकार की तुलना न करते, बल्कि मेरे सामने आकर अपनी शंकाओं का समाधान कराते। यदि तुम्हें इस बात का अभिमान है कि तुम परमदयाल जी को समझ गए हो और पहले से ही तत्वज्ञानी बन चुके हो तो तुम्हें कभी भी ज्ञान नहीं मिल सकता। यदि वास्तव में तुम्हें ज्ञान हो गया है तो तुम मेरे सामने आकर अपने अनुभव

के आधार पर मेरे अज्ञान को दूर करो। मैं तुम्हें सच्चा गुरु मान लूँगा। और तुम्हें ही परमदयाल जी महाराज का कार्यभार सौंप दूँगा।

तुम्हारे पत्र का उत्तर देते हुए मैंने तुम्हारी आपत्तियों को नहीं छुआ। यद्यपि परोक्ष रूप से मैंने उनका उत्तर दे दिया है। जहां पर तुम चौथे प्रश्न में यह बता रहे हो कि परमदयाल जी ने शब्द और प्रकाश को इष्ट बनाने का आदेश दिया है, तुमने उनके उस मन्तव्य का जिक्र नहीं किया जिसमें वह कहते हैं कि साधारण व्यक्ति कर्मों के बन्धनों के कारण शब्द और प्रकाश को इष्ट नहीं बना सकता, इसलिए उन्हें किसी वीतराग पुरुष को अपनी खोपड़ी में रखना चाहिए। इसी संदर्भ में जो तुमने मेरे उन शब्दों को प्रस्तुत किया है जो जून 1990 के मानव मंदिर के पृष्ठ 48 से लिए गए हैं, तुम्हें समझना चाहिए कि मैंने उसी वीतराग पुरुष को खोपड़ी में रखने की व्याख्या की है और कहा है कि प्रेमी सत्संगी को जीवित सद्गुरु को इष्ट बनाने के बाद अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं रहती। मेरे शब्दों को परमदयाल जी का विरोध समझना अज्ञान और मूर्खता है।

तुमने पाँचवें प्रश्न में भी वही भूल की है जो चौथे और छठे में की है। परमदयाल जी एक ऐसे सन्त हैं जिन्होंने घोषणा की है कि शब्द सुनने और प्रकाश देखने के बाद भी कोई व्यक्ति काल-कर्म से बच नहीं सकता। उन्होंने स्वयं कहा है कि निज अवस्था, अवस्थाहीन अवस्था और राधस्वामी अवस्था शब्द से परे की अवस्था है और हर एक व्यक्ति उन दर्जों से नहीं गुजरता जिनका जिक्र स्वामी जी

महाराज ने हिदायतनामा में किया है। गुरु तुमको पराशब्द एवं पराप्रेम से ओत-प्रोत होकर शब्द और प्रकाश के दर्जों से गुजरे बिना भी मंज़िले-मकसूद पर पहुँचा सकता है। यह डिब्बा पराप्रेम का डिब्बा है।

तुम्हारी भ्रांतियां तुम्हारे मन का विकार है, इसलिए तुम्हें वह नाम-रत्न, जिसे मैं पराप्रेम और पराशब्द कहता हूं, मेरे दू ब दू बैठकर ही प्राप्त हो सकता है। मेरे विचार में तुम्हारे पत्र का इतना उत्तर तुम्हारी काट-छांट करने वाली बुद्धि के लिए लाभदायक होगा।

तुम्हें और तुम्हारे परिवार को हार्दिक आशीर्वाद और राधास्वामी।

आपका फकीरमय
मानव

❖ ❖

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्‌गुरु

हजूर मानव दयाल

डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको सत्संग के दौरे के सम्बन्ध में यह बताया था कि हम 5 मई को उज्जैन से श्री चरनजीत सिंह की जीप के द्वारा प्रातःकाल इटारसी के लिए रवाना हो गए। दुपहर के करीब 12 बजे हम भोपाल पहुँचे। जबरदस्त गर्मी पड़ रही थी। हम चरनजीतसिंह जी के बहनोई की दुकान पर थोड़े समय के लिए रुके। हम सब पसीना-2 हो रहे थे और गर्मी नकाबिले बर्दाश्त थी। चरनजीतसिंह जी की बहन ने फ़ोन पर कहा कि वह हमारे लिए खाना बनायेगी और हमें अवश्य उनके घर जाना चाहिए। इसके साथ ही साथ फ़ोन पर श्री विजय गुप्ता, जनरल मैनेजर अशोका होटल, भोपाल ने बड़ी नम्रता से कहा कि वह और उसका परिवार कई दिनों से

हमारी प्रतीक्षा कर रहा था और उसको आशा थी कि हम इटारसी जाते हुए अवश्य उसके निवास पर कुछ समय के लिए विश्राम करेंगे। यह विजय गुप्ता दिल्ली के श्री ऋषि प्रकाश गुप्ता के साले हैं। इनके स्वर्गीय पिता जी बड़े ही श्रद्धालु भक्त थे। इनकी माता जी और सभी बहनें मानवता मन्दिर से सम्बद्ध हैं। इन्हीं कारणों से मैंने यह निर्णय किया कि हम श्री विजय गुप्ता के निवास पर विश्राम करने के बाद ही श्री चरनजीतसिंह की बहन के घर से होते हुए इटारसी के लिए रवाना होंगे। मेरे परमप्रिय आत्मस्वरूप सत्संगियो ! यदि आप उस समय मेरे साथ होते, तो मेरे निर्णय की सराहना करते। हम करीब एक बजे 5, 6 मील जीप में यात्रा करने के बाद श्री विजय गुप्ता के होटल में पहुँचे। उसका निवासस्थान भी होटल के अन्दर था। उनके यहां पहुँचते ही हमें गर्मी से बहुत राहत मिली। उनकी सुयोग्या पत्नी ने पहले से ही भोजन तैयार कर लिया था। इसलिए उन्हें भोजन परोसने में करीब आधा घन्टा लगा।

विजय का निवासस्थान बहुत सुन्दर और वातानुकूलित था। हमारी शारीरिक थकावट तुरन्त दूर हो गई। भोजन के बाद विजय की पत्नी से बातचीत करने पर मुझे यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि वह डा. श्रुतिधर गुप्ता राजस्थान के गवर्नमैंट कालिज के अवकाशप्राप्त प्रधानाचार्य और मेरे बहुत पुराने परममित्र की सुपुत्री थीं। डा. श्रुतिधर गुप्ता सन् 1950 में बीकानेर डूंगर कालिज में जीवशास्त्र के प्राध्यापक थे और उनकी मेरी घनिष्ठ मित्रता थी। उस समय तक विजय की पत्नी का जन्म भी नहीं हुआ था। मैं आपको यह सब सूचना इसलिए दे रहा हूं कि

वही सत्संगी सद्गुरु के निकटतम हो जाते हैं, जिनमें इस जन्म के और पूर्वजन्म के अच्छे संस्कार होते हैं। दो तीन घन्टे विश्राम करने के बाद, करीब साढ़े पांच बजे सायंकाल हम श्री चरनजीत की बहिन के घर पहूंचे। करीब आधा घन्टा वहां रुकने के पश्चात् हम इटारसी के लिए रवाना होकर, होशंगाबाद के रास्ते से करीब नौ बजे श्री चरनजीतसिंह के घर पर इटारसी पहुंच गये।

श्री चरनजीतसिंह जी के घर पर रात के 11 बजे तक सत्संगियों का ताँता बंधा रहा। इटारसी में अधिकतर सत्संगी सिन्धी हैं और उनकी श्रद्धा अगाध है। परमदयाल जी हर वर्ष इटारसी जाया करते थे, इसलिए वहां के सत्संगियों पर मानवता धर्म की गहरी छाप है। प्रातःकाल 5 बजे से ही सत्संगियों ने आना शुरू कर दिया। मैं इन भोले-भाले सत्संगियों की श्रद्धा को खूब समझता हूं और उनके प्रातःकाल ही मेरे पास आशीर्वाद के लिए आने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं होती। मैं विशेषकर वृद्धा सिन्धी माताओं से सिन्धी भाषा में ही वार्तालाप करता हूं। उन्हें मेरा यह व्यवहार बहुत ही अच्छा लगता है। प्रातःकाल 6 बजे ही मैंने साधना के शब्द पढ़ने पर वन्दना का सत्संग दिया। उसके बाद मैं, श्री शब्दानन्द और श्री चरनजीतसिंह घूमने के लिए चले गये। वापिस लौटने के बाद, स्नान तथा नाश्ते के पश्चात् हम सिन्धी कालोनी में श्री सुन्दरदास जी के घर पर पहुँच गए, क्योंकि वहां पर नौ बजे एक सार्व-जनिक सत्संग का आयोजन था। इस सत्संग में इटारसी के सत्संगियों के इलावा बहुत से सत्संगी दूर - 2 से भी आए हुए थे। सत्संग का इटारसी निवासियों पर बहुत ही अच्छा

प्रभाव पड़ा और उनमें से कई लोगों ने नामदान भी लिया। इस प्रकार हमारा मानव परिवार दिनों दिन उन्नति कर रहा है और परमदयाल जो महाराज का मिशन आगे बढ़ रहा है।

उसी दिन सायंकाल का सत्संग भी श्री सुन्दरदास जी के घर पर हुआ। दुपहर को हमने श्री सुन्दरदास जी के घर पर ही विश्राम किया और उनके घर वालों को व्यक्तिगत रूप से भी आशीर्वाद दिया। मैंने कई बार पहले भी बताया है कि इटारसी के सिन्धी सत्संगियों में परमदयाल जी के संस्कारों के कारण अगाध श्रद्धा और विश्वास है। हालांकि मैं जानता हूँ कि सिन्धी सत्संगी पूरी तरह से हिन्दी भाषा नहीं समझ सकते, फिर भी ऐसा लगता है कि वह मेरे सत्संग के हरएक वाक्य को समझते हैं। सत्संग में मन की भाषा होती है और बिना शब्दों के भी सद्गुरु और सत्संगी में तार बँध जाता है। मैं कभी-2 स्वतः ही इटारसी में सिन्धी भाषा में सत्संग दे दिया करता हूं। इटारसी के परमस्नेही श्रद्धालु सत्संगियों के प्यार का भी पारावार नहीं।

प्रसंगवश आपको मैं बता देना चाहता हूं कि परमदयाल जी महाराज जब पहली बार अमेरिका में सत्संग देने के लिए आये, तो मैं उनके सत्संग का तुरन्त अंग्रेज़ी अनुवाद किया करता था। मैं उनके बेधड़क उन शब्दों को कोमल बना देता था, जिससे ईसाई मत वालों को ठेस न पहुंचे। परमदयाल जी महाराज उस समय कहते थे, "तुमने अच्छा किया।" जब वह दूसरी बार अमेरिका आए, तो उन्होंने स्वयं ही अंग्रेजी में बोलना शुरू कर दिया। अमेरिका के

सत्संगी कहते थे कि उन्हें परमदयाल जी की हिन्दी भाषा भी समझ में आती थी। परमदयाल जी महाराज कई बार सत्संग में हिन्दी भी बोल दिया करते थे। उस समय अमेरिका के सत्संगियों को विशेष आनन्द मिलता था। मैं मासिक सन्देशों में आपको आन्तरिक भाव देने की कोशिश करता हूं। भावों और विचारों से भाषा पीछे रह जाती है। इटारसी में जितने भी सत्संग हुए, सभी में सत्संगियों ने परमानन्द का अनुभव किया और हरएक सत्संग के अन्त में सभी ने समाधि लगाई।

इटारसी के कार्यक्रम के पश्चात् रिजर्वेशन न होने के कारण हम एक ट्रेन को छोड़ कर दूसरी ट्रेन से आगरा प्रातःकाल उस गाड़ी से पहुचे, जो हमारी निश्चित ट्रेन से तीन घण्टे पहले पहुंच गई थी। हमने केवल दो घण्टे स्टेशन पर प्रतीक्षा की और मथुरा के श्री अरविन्दर बाजवा और आगरा के सत्संगी पहुंच गए। हमारा कुछ सामान आगरा के सत्संगियों द्वारा श्री राजेश गुप्ता के निवासस्थान पर भेज दिया गया और हम अरविन्दर की गाड़ी में मथुरा के लिए रवाना हो गए क्योंकि वहां पर सायंकाल मथुरा रिफाइनरी के कम्यूनिटी हाल में सत्संग आयोजित था। श्री अरविन्दर और उनकी पत्नी ने हमारी बहुत सेवा की और उनके आठ वर्षीय सुपुत्र ने हरएक सत्संग ध्यानपूर्वक सुना। दिन भर श्री अरविन्दर के घर में भी मथुरा के सत्संगी आते रहे और परामर्श करते रहे।

सायंकाल रिफाइनरी के विशाल सम्मेलन भवन में सत्संग आयोजित हुआ। इस सत्संग में मथुरा के सत्संगियों के इलावा आगरा के सत्संगी भी मौजूद थे। मैं आपको

यह बताना भूल गया कि दुपहर को हम श्री हज़ारी सिंह और उनके छोटे भाई कैप्टन मनोहर सिंह जी के घर पर गए। आपकी सूचना के लिए यह बता देना आवश्यक है कि यह हज़ारी सिंह वही हैं, जिनका चाचा कई वर्ष पहले मर गया था। वह परमदयाल जी महाराज का सत्संग सुनता रहता था, किन्तु उससे पहले वह काली देवी का उपासक था। उसे मरने का डर था, किन्तु परमदयाल जी ने उसे आशीर्वाद दिया कि उसकी मृत्यु शीघ्र नहीं होगी। एक बार मर जाने के बाद वह फिर जीवित हो गया और उसने अपनी मृत्यु का अनुभव इस प्रकार बताया :---

"जब मैं मर गया, तो दो यमदूत मेरी आत्मा को लेकर एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां एक काली देवी सिंहासन पर बैठी थी और जो - जो आत्माएं वहां आती जाती थीं, वह उनको खाती जाती थी। मैंने उस देवी से प्रार्थना की कि मुझे खाने से पहले वह मुझे हज़ारी सिंह से और परमदयाल जी से मिला दे। वहां हज़ारी सिंह भी आ गया और परमदयाल जी भी प्रगट हो गए। परमदयाल जी ने देवी से कहा, 'तू हज़ारीसिंह के चाचा को नहीं खा सकती।' तुरन्त मेरे शरीर में जान आ गई और मैं जीवित हो गया।"

परमदयाल जी महाराज ने इसके बारे में अपने सत्संग में कहा था कि वह प्रगट नहीं हुए, लेकिन हज़ारीसिंह के उन संस्कारों ने उसे मरने नही दिया और मेरे रूप को प्रगट कर दिया, क्योंकि मैंने उसे कहा था कि उसकी शीघ्र मृत्यु नहीं होगी। इस प्रकार उसका विश्वास पक्का हो गया था। क्योंकि वह पहले काली देवी को मानता था, इसलिए उसे मरते समय काली का रूप भी प्रगट हुआ। हज़ारीसिंह तथा

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

उनके भाई कैप्टन मनोहर सिंह को मानवता मन्दिर के प्रति और मेरे प्रति अगाध श्रद्धा है। मनोहरसिंह ने अपने नये मकान का नाम फ़कीरभवन रखा हुआ है। जबसे मैंने परमदयालजी महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए, सत्संगियों से सम्पर्क किया है, तो मेरा अनुभव यह बताता है कि परमदयाल जी महाराज ने जिस भी सत्संगी को जो कुछ करने को कहा, वही सहज में ही मेरे मुँह से निकल जाता है। केवल इतना ही नहीं, जब मैं कभी किसी श्रद्धालु सत्संगी के घर जाता हूं और उसके कमरे में 2 या 3 सोफे रखे होते हैं, उनमें से मैं जिस सोफे पर बैठता हूं तो सत्संगी तुरन्त कह उठता है, "इसी ही सोफे पर परमदयाल जी महाराज बैठा करते थे।" ऐसी घटनायें भारत में और अमेरिका में भी घटी हैं। देहली में श्री के. एल. अग्रवाल के घर पर जब मैं पहली बार गया और श्री नन्दलाल जी मेरे साथ में थे, के. एल अग्रवाल ने यही कहा कि परमदयाल जी महाराज उसी ही सोफे पर बैठा करते थे, जिस पर मैं बैठा था। अमेरिका में श्री अजीत कुमार के घर पर पहली बार जाने पर यही घटना घटी। यदि मैं इस सम्बन्ध में आपको सभी मिसालें दूं, तो एक बड़ी पुस्तक बन जाएगी। मैं केवल यह बता देना चाहता हूं कि जहाँ सच्चा और अगाध प्रेम होता है, वहाँ गुरु और शिष्य में, सद्‌गुरु और सत्संगी में भाषा के बिना ही विचारों का और भावों का आदान-प्रदान हो जाता है। मथुरा में सायंकाल के सत्संग पर सत्संगियों के इलावा रीफाइनरी की कालोनी में रहने वाले कुछ विद्वान लोग भी आए। उनको मेरे सत्संग से काफ़ी लाभ पहुंचा और उनके मन में जो

शंकाएं थी वह अपने आप ही दूर हो गईं।

10 मई को प्रातःकाल हम आगरा में श्री राजेश गुप्ता के घर पर पहुंच गए। वहां पर बाहर से आये हुए सत्संगी हमारी 9 मई से ही प्रतीक्षा कर रहे थे। इनमें से ग्वालियर के, दाता दयाल जी महाराज के समय के पुराने सत्संगी श्री एस. एल. साईं ग्वालियर से आए हुए थे। उनकी कई वर्षों से यह प्रबल इच्छा थी कि वह मुझसे मिलें। उन्हें व्यक्तिगत वार्तालाप के अलावा, प्रातःकाल के एक छोटे से सत्संग में, जो मैंने उनके लिए ही किया, विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। मैंने यह सत्संग इसलिए आयोजित किया क्योंकि श्री एस. एल. साईं को दुपहर से पहले - 2 ग्वालियर पहुंचना था। वृद्धावस्था के कारण उन्हें धूप में यात्रा करने की मनाही थी।

सायंकाल का सत्संग बहुत ही विशाल रूप से आयोजित किया गया था। श्री राजेश गुप्ता के घर के सामने एक विशाल शामियाना लगाया गया था, जो सत्संगियों से भर गया और लोग दूर - 2 तक खड़े होकर ध्यानपूर्वक सत्संग सुनते रहे। इस सत्संग में सम्मिलित होने वाले सत्संगी अलीगढ़, अवागढ़, मथुरा और आसपास के गाँवों से आकर शामिल हुए। कइ वर्षों से आगरा वालों का आग्रह था कि वहां पर अवश्य ही सत्संग आयोजित होने चाहिए। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि उनमें सच्ची भक्ति और श्रद्धा है। प्रातः और सायं काल के सत्संग के बीच में हम 11 बजे गोकलपण्डी में हजूर अगमप्रसाद माथुर जी के निवास-स्थान पर उनसे मिलने के लिए गये। स्वामी जी महाराज

द्वार चलाए गए और हज़ूर महाराज रायसालिगराम जी द्वारा स्थापित किए गए आगरा के राधास्वामी मत की परम्परा में केवल महाराज के पोते हज़ूर अगम प्रसाद जी की गद्दी ऐसी है, जहाँ पर लगातार सत्संग होता है और हज़ारों व्यक्ति लाभान्वित हो रहे हैं। डा. हज़ूर अगम प्रसाद जी महाराज एक विख्यात विद्वान भी हैं और आध्यात्मिकता में निपुर्ण हैं।

हालांकि वह अस्वस्थ थे, फिर भी उन्होंने मुझे मिलने के लिए विशेष समय दिया और करीब सवा घन्टे तक वह हमारे साथ प्रेम से ओत-प्रोत ऐसी बातचीत करते रहे कि एक सत्संग का माहौल बन गया। मुझे उनकी एक बात बहुत मार्मिक लगी कि जो लोग राधास्वामी मत के नाम पर जहां कहीं भी सत्संग दे रहे हैं और जिन्होंने बड़े-बड़े डेरे और केन्द्र स्थापित कर लिए हैं, वे राधास्वामी मत के असली प्रवर्त्तक और स्वामी शिवदयाल जी महाराज के असली उत्तराधिकारी हज़ूर महाराज रायसालिगराम जी महाराज को भूले हुए हैं और उनके साहित्य की बात तक नहीं करते। वास्तव में, स्वामी शिवदयाल जी महाराज ने स्वयं लिखा है कि राय सालिगराम जी महाराज उसी परमतत्त्व राधास्वामी दयाल का गुरुमुख अंग थे, जिसका स्वामी जी महाराज अवतार थे। सवा घन्टे के आध्यात्मिकता और पराप्रेम के ओत-प्रोत माहौल में जो कुछ मैंने कहा और जो प्रतिक्रिया अगम प्रसाद जी महाराज ने की, वह एक ऐसे सत्संग में परिवर्तित हो गया, जिसमें सभी उपस्थित लोग मानो समाधिस्त हो गए। मेरे साथ उस समय आचार्य श्रद्धानन्द कु. सायना, श्री राजेश गुप्ता और

मोहनसिंह थे। इनके इलावा हजूर अगमप्रसाद जी की धर्मपत्नी, उनके भाई की धर्मपत्नी कुछ और घरवाले और उनके सैक्रेटरी भी मौजूद थे। श्री अगमप्रसाद जी का प्रेम इतना उमड़ा कि मानो हम एक दूसरे में समा गये।

हमारा पीपलमण्डी में यह अनुभव अविस्मरणीय रहा। दूसरे दिन 11 मई प्रातःकाल 6 बजे हम स्वामी शिवदयाल जी महाराज के जन्मस्थान उस पन्नी गली में गए, जहां पर उन्होंने आयुपर्यन्त सुरत शब्द योग का अभ्यास किया और विशेषकर हजूर महाराज रायसालिगराम जी के आग्रह पर राधास्वामी सत्संग की अमृतवर्षा शुरु की। उनका यह विशाल भवन देखने योग्य है। हमने इस भवन में उन कमरों का निरीक्षण किया, जहाँ स्वामी जी महाराज अभ्यास किया करते थे और जहाँ वह सत्संग दिया करते थे। हम एक विशाल जीने से ऊपर चढ़कर उस विशाल कमरे में पहुंचे, जहाँ पर कुछ श्रद्धालु रोज़ाना प्रातःकाल सार वचन का पाठ किया करते हैं। उस पाठ में हम भी बैठे। पाठ के बाद प्रसाद बाँटा गया और पाठ करने वालों को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मैं परमदयाल जी महाराज की परम्परा में राधास्वामी मत की सेवा कर रहा हूं। मुझे इस बात का खेद हुआ कि स्वामी जी महाराज के निवासस्थान और सुन्दर विशाल भवन में भी सत्संग की परम्परा नहीं चल रही। उस भवन के इन्चार्ज ने मुझे कहा कि मैं भविष्य में इसी भवन में निवास कर सकता हूं।

11 मई के प्रातःकाल और सायंकाल के सत्संगों में सम्मिलित होने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। सायंकाल के सत्संग के पश्चात हम श्री अरविन्दर वाजवा

के साथ कार द्वारा मथुरा के लिए इसलिए रवाना हो गये क्योंकि हमें दूसरे दिन अलीगढ़ पहुंचना था।

हम 12 मई प्रातःकाल मथुरा से रवाना हो कर प्रातः साढ़े आठ बजे अलीगढ़ गोविला जी के यहाँ पहुंच गये। अल्पाहार के बाद उन सत्संगियों के लिए एक छोटा सा सत्संग हुआ, जो प्रातःकाल से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। दिनभर अलीगढ़ के सत्संगियों का तांता बंधा रहा। श्री रविदत्त जी की पत्नी ने हमेशा की भांति हमारे भोजन की व्यवस्था की। सायंकाल के सत्संग से पहले ही श्री दुग्गल और उनके परिवार के सदस्य मिलने के लिए आये और उन्होंने आग्रह किया कि हमारा सायंकाल का भोजन उनके निवासस्थान पर हो। सायंकाल का सत्संग बहुत ही प्रभावशाली रहा। उसमें सम्मिलित होने के लिए आगरा से श्री राजेश गुप्ता और उनका परिवार भी सम्मिलित हुआ। सत्संग के पश्चात् श्री दुग्गल के घर पर करीब 10 और व्यक्तियों ने भोजन किया। रात्रि के विश्राम के लिए हम गविला जी के निवासस्थान पर आ गए।

14 मई को प्रातःकाल नाश्ते के बाद हम साढ़े छः बजे दयालनगर के लिए रवाना हो गये। दयाल नगर में साढ़े आठ बजे सत्संग आरम्भ हुआ और करीब साढ़े दस बजे समाप्त हुआ। अलीगढ़ के दौरे पर मैं हमेशा दयाल नगर जाया करता हूं। यह स्थान भी एक तीर्थस्थान है। दातादयाल जी महाराज काफी समय तक इस स्थान पर रहे। उन्होंने यहां से ही उच्चकोटि के लेख प्रकाशित किए और लगातार सत्संग दिया। दयाल नगर के भवन में सरकारी

डाकखाना है, जिसका नाम दयालनगर पोस्ट आफिस है। श्री प्रकाश जी इस केन्द्र पर रहते हैं। दातादयाल जी को यह इच्छा थी कि दयाल नगर एक विश्व विख्यात अध्यात्मिक केन्द्र बने। मुझे उनके इस विचार का कोई ज्ञान नहीं था। जब मैं पहली बार 1982 में दयाल नगर गया था, तो मैंने अपने सत्संग में सहज में कह दिया था कि मैं इस केन्द्र को अध्यात्मिक अभ्यास का केन्द्र बनाने की चेष्टा करूंगा। जब मैंने बाद में होशियारपुर में दातादयाल जी की महारामायण की भूमिका को पढ़ा, तो उसमें दातादयाल जी ने यह लिखा था कि मेरा पोता इस केन्द्र को पनपायेगा। मैंने यह सब कुछ प्रसंगवश लिखा है। दयालनगर की भूमि के मालिकों में से एक ने तो 7 हज़ार गज़ भूमि केन्द्र के लिए अनुदान दे दी है। आशा है कि दूसरे हिस्सेदार भी कुछ पैसा लेकर इस शुभ कार्य के लिए भूमि दे देंगे। इस सम्बन्ध में मैं आपको भविष्य में सूचित करता रहूंगा।

इस मासिक सन्देश में समय और स्थान के अभाव के कारण मैं आपको इस दौरे की शेष सूचना केवल संक्षेप में ही दूंगा, ताकि अगले मासिक सन्देश तक मैं आपको गुरु-पूर्णिमा तक की सूचना दे सकूं। हम अलीगढ़ से चलकर एक दिन के लिए बुलन्दशहर रहे, जहां पर एक छोटा सा सत्संग विशाल टाकिज वालों के यहां हुआ और एक विशाल सार्वजनिक सत्संग आदर्श सक्सैना की देखरेख में एक धर्मशाला मैं हुआ, जहां पर सैंकड़ों सत्संगियों ने सत्संग का लाभ उठाया और उसके बाद भंडारा हुआ। इसके बाद आदर्श [illegible] श्री यज्ञदत्त शर्मा ने तथा अनुपम सक्सैना ने दिन-रात परिश्रम करके इस दौरे को बहुत

सफल बनाया। विशाल टाकिज़ के श्री राकेश शर्मा तथा उनके परिवार वालों ने बहुत सेवा की और हमें अपनी कार द्वारा मेरठ पहुंचा दिया। यहां पर हम श्री नरेन्द्र त्यागी के घर पर रहे। एक सत्संग श्री नरेन्द्र त्यागी के घर पर और एक सत्संग श्री धर्मेन्द्र जी के यहां आदर्श नगर में हुआ। हम मेरे प्यारे ब्रह्मसिंह जी के घर पर गये, और थोड़े समय के लिए डिफैन्स कालौनी में ठहरे।

इसके पश्चात् हम श्री धर्मेन्द्र जी के द्वारा लाई गई दो कारों से मुजफ्फरनगर पहुंचे, जहां पर हम भुण्डभर और चरथावल सत्संग के लिए गये। यहां पर एक घटना बताने योग्य यह है कि मैंने श्री रामनारायन त्यागी के यहां चरथावल में सत्संग स्थगित कर दिया, जिस दिन निश्चित किया था और दूसरे दिन उनके यहाँ गये। कुदरत से ऐसी घटना घटी कि इस परिवर्तन के कारण श्री रामनरायन त्यागी की जान बच गई, क्योंकि निश्चित सत्संग वाले दिन उनको ठीक उसी समय दिल का दौरा पड़ा, जो समय हमने सत्संग के लिए निश्चित किया था। सत्संग न होने के कारण उन्हें चरथावल से तुरन्त मुजफ्फरनगर सबसे अच्छे हस्पताल में भर्ती कर दिया गया, जहां पर उनका अच्छा इलाज हुआ।

इसी प्रकार हम सरसों हेरी के श्री देवदत्त इन्जीनियर साहिब के द्वारा भेजी गई जीप से सरसों हेरी और यमुनानगर रुकते हुए और सत्संग देते हुए अम्बाला के रास्ते से 25 मई को क़रीब दुपहर के 2 बजे मानवता मन्दिर, होशियारपुर पहुंच गए। इस मासिक

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

सत्संग के सम्बन्ध में मेरे प्यारे सत्संगियों के लिए यहां तक की सूचना काफ़ी रहेगी। जहां तक सन्तमत की दृष्टि से चार पुरुषार्थों की व्याख्या का सम्बन्ध हैं। यह चर्चा अगले मासिक सत्संग में जारी रहेगी। यहाँ पर केवल इतना बता देना आवश्यक है कि सनातन धर्म में और सन्तमत में अर्थ को अनावश्यक नहीं माना गया, बल्कि उसे धर्म और मोक्ष का उसी प्रकार साधन माना गया है, जिस प्रकार काम एवं इच्छाओं की तृप्ति को और काम, क्रोध, लोभ आदि को भी मोक्ष का साधन स्वीकार किया गया है।

मेरे परमप्रिय आत्मस्वरूप सत्संगियो ! मुझे समय-समय आपके प्यारे पत्र आते रहते हैं, जिनमें आप प्रायः लिखा करते हो कि आप हमेशा मासिक सन्देश की प्रतीक्षा किया करते हो और आपको ऐसे लगता है कि सत्संग के दौरे के दौरान में आप मेरे साथ साथ चल रहे हो। इस सन्देश के सिलसिले में एक यह विशेषता भी हो गई है कि इसमें केवल घटनाओं का कोरा ज़िक्र ही नहीं होता, बल्कि स्थान-2 पर ज्ञान की बातें और सत्संग भी ऐसी सहज शैली में हो जाता है कि हर एक साधारण व्यक्ति उससे लाभ उठा सकता है। मासिक संदेश का यह विकास केवल आपके प्रेम और आपकी श्रद्धा के कारण हुआ है और होता रहेगा। मासिक सन्देश एक ऐसा सूत्र है, जिसके द्वारा आपके प्रेम की धारा राधा बनकर मुझे स्पर्श करती है और मेरी अगम की धारा स्वामी एवं शब्द बनकर आपकी आत्माओं को लौकिक आनन्द देकर पारलौकिक

परमानन्द की ओर ले जाने में सहायक होती है। इन शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की सद्भावना और हार्दिक आशीर्वाद प्रेषित करता हूं और सच्चे दिल से चाहता हूं कि आपके परिवारों में स्वास्थ्य, सुख, समृद्धि और शान्ति का राज्य रहे ।

सब को राधास्वामी।

आपका फ़कीरमय
मानव।

परमसंत हजूर परमदयाल जी महाराज के अनमोल विचार

गतांक से आगे

इस द्वन्द्व जगत् के खेल के प्रभावों से बचने के लिए धर्म का एक दूसरा सिद्धान्त है।

यह सिद्धान्त मनुष्य को उन दु:ख, मुसीबत, खुशी, रंज से जो हमको, बाह्य प्रभावों के कारण मिलते हैं, बचाता है, यह सिद्धान्त क्या है ?

मनुष्य अपने आपको, अपनी आत्मा को, अपनी तवज्जह को जो शरीर और मन की श्रेणी में आकर बाह्य प्रभावों को ग्रहण करती है निकाल ले। इस का ढंग केवल सुरत शब्द योग है। मनुष्य की तवज्जह जब इस नग़मा (शब्द) को सुनती है तो वह प्रकाश और पदार्थीय प्रभावों से पृथक् होकर अपने स्वरूप या सच्चे ईश्वर से मिलकर सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकती है मगर यह केवल गिने-चुने मनुष्यों के लिए है।

दोस्तो ! धर्मों की भिन्नता के कारण आप आपस में लड़ते हो। कोई तुमको समझाने वाला नहीं है ? है। बल्कि सच्चाई यह है कि तुम समझने वाले नहीं हो। अच्छा हो कि सच्चे मनुष्यों का संग करो और थोड़ा - 2 साधन करो ताकि आप लोगों को धर्म की वास्तविकता का पता मिले। वर्तमान हिन्दू और मुस्लमानी धर्म की लड़ाई केवल तुम्हारी ग़लत समझ का परिणाम है।

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़क़ीरधाम, सरड़ डोगरी, बरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश।

महत्वपूर्ण सूचना

सभी सत्संगी जन को सूचित करते हर्ष हो रहा है कि परमसंत सद्गुरु हिज़ होलीनेस हजूर मानवदयाल डॉ. आई. सी. शर्मा जी महाराज का परा आध्यात्मिक सत्संग अमेरिका से लौटने पर 3 जनवरी 1993, को प्रातः 9 बजे से सालवान पब्लिक स्कूल, ओल्ड राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली के सभा भवन में आयोजित है।

इस शुभ अवसर पर भारत के सभी आचार्य गण के अतिरिक्त अमेरिका के आचार्य डा. डब्ल्यू. रोडनहाइज़र साहब भी पधार रहे हैं तथा सभी आचार्य गण अपने प्रवचनों में अपने आध्यात्मिक अनुभव व्यक्त भी करेंगे।

साथ ही सूचित किया जाता है कि 6 जनवरी 1993 को मानवता मन्दिर, होशियारपुर में प्रातः 9 बजे से हिज़ होलीनेस हजूर महाराज जी का सत्संग होगा जिसमें अमेरिकी आचार्य डॉ. रोडनहाइज़र का प्रवचन भी होगा।

सभी सत्संगी जन इन महान् अवसरों से लाभ उठाने के लिए सादर आमंत्रित हैं।

जनरल सैक्रेटरी
मानवता मन्दिर, होशियारपुर।

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

November 10th, 1992

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

Food and Its Influence on Human Nature

by

Data Dayal Maharshi Shiv Brat Lal Ji Maharaj

The physical and mental constitution of a person depends on the type of food he eats. It is so because the development of body and mind is mainly the effect of food. Among the Hindus a lot of research und discussion in the matter of food has been done and a lot of emphasis has been made on its consumption. The evil effect of bad food has been discussed thread bare and those who could not give up bad type of food were not only tortured but were ordered to stay away from the main stream and were sent to coventery, so that masses may be protected from their evil effect. The researches in matter of food have mostly been done by the followers of different religion, because they had paid attention to discipline their mind and keep it inequilibrium.

Charak Shastra, Materia medica of the science of medicines among the Hindus is the oldest book on this subject. It is full of the description of various types of food and their different effects on body and mind. It mentions almost all those ways of eating, all types of food which were common among the Hindus in the hoary past similar is the case with the works of medicines ethical Sushrat, Vag Bhatt etc. But these don't have the details like that of Sage Charaka.

If we disregard the vedic literature and concentrate on particular religious books and the arguments of philosophy, even there we shall find discussion on the subject of food copiously. Spiritually inclined sages, devoted to enlightenment also throw sufficient light on this matter. Vrihadaranyaka Upanishad lays down the instructions for the special type of food for the creation of progeny. The Buddhists and Jainas have dealt with this subject very minutely and explained the significance of every type of food in detail. The physicians of the Indigenous medicine in India have benefitted a lot from them and whatever types of food are used by the patients, under their directions are almost the same, which were recommended by the experienced ascetics of Jainism and Buddhism. The Vaishnavas also adopted food habits

by the Jainas and the Buddhists. It would not be an exaggration to say that the types of food used by the Vaishnava are the result of the research of the Jainas and the Buddhists.

Not only the brain and mind develop according to the food we take, but the entire body feelings, thoughts and emotions of man are constituted by it. It is necessary to have the knowledge of food which we take daily to understand the nature and reality.

Even Shrimad Bhagvadgita presents a logical discussion about diet and food. Even if we attend only to the discourses and teachings of Gita, same light can be thrown on the subtality and grossness of food.

There are three kinds of food from spiritual and religious point of view :

(1) Sattavik, light
(2) Tamsik heavy and
(3) Rajasik (Stimulating)

These three Gunas or constituents are different from one another. Satoguna is subtle, Tamoguna is gross and Rajoguna is the mixture of subtle and gross. Let us give a brief explanation of them, so

that even a layman may be able to uuderstand their significance.

(1) The list of the food under the category of Sattoguna;

Rice, milk, classified butter, butter, pulses, wheat, barley, Moong beans, Moth beans, fruits, dry fruits, easily digestable, sour sweets, and sweets free from stimulation.

The following benefits are accrued from these foods :---

These kinds of food prolong one's life, give one peace of mind. One attains love energy, compassion effortfulness, love of justice, tender nature, protection of vital energy (Veerya), enhancement of intelligence, reflection attentiveness and peaceful attitude and physical as well as mental health. The person on account of his stable nature never falls victim to terrible anger. This good habit makes one understand the purpose of religion and philosophy better makes one rise above all. Prejudice and understand everything in the right perspective.

(2) The list of foods under the category of Rajoguna :

These foods include Urad beans, chick peas, soiabeans, raddish, corn, millet, carrots, potatoes, ripe mango, tamarind alcohol, meat, yogurt and the punject vegetables. The dry foods, which are bitter too sour too hot are also in the category of Rajoguna. Red peppers, cloves, onions, hot milk etc., are also included in the list of food in the category of Rajoguna.

following is the effect of intake of this kind of food :---

They increase lust and vital energy. The excess of this kind of food makes the sperm thin, resulting in the night discharge. The mind and brain become weak, and there is fickleness of mind and one falls victim to the habit of conflict and restlessness. Lust, anger, greed, infatuation, egotism partiality begottedness, narrow-mindedness, hard heartedness and obstinacy dominates the person who intake these types of food. The person with Rajoguna nature cannot be firm in his intention even for a short time. The religious and social principles are transgressed by such people. Their mind is always disturbed, picking up quarrels and struggles, as well as engaging in debates in religious matters are the special features of such people.

Justice and discipline are absolutely absent

in them. The people eating Rajasik type of food are short-lived and consider all those, who disagree with them as unwise and uncultured.

(3) The list of foods under the category of Tamoguna.

This list includes all types of stale food, stinking vegetables and oils. Stale grains, dirty water, impure air, the food stored for several days too sour yogert, stale dry fruits, stale fish and meat, hemf, stale milk etc. Peas, sugar, corn or cob and all types of easily indigestible food are also included in the category of Tamoguna.

The following are the effects of the intake of these types of food :—

It leads to the impurity of blood and causes diseases in various organs of the body. The stomach if upset. The subtle sense organs become defective and it causes common cold, headache giddiness and even unconsciousness. It makes the body, mind and intelligence dirty. It shortens life and even if the life is prolonged it is not worth living. It is brutal and animal like. It causes lethargy and laziness. Procratination is the special characteristic of a Tamsik person such a person is devoid of self-respect and is indifferent to shame and disrespect. This is the brief

description of the three types of food.

Let us have a look at these categories of food from the spiritual and religious point of views to find out what type of persons are worthy of religious teachings.

A person belonging to the category of Sattogunas is most worthy of religious teachings, because the curtain of ignorance does not exist in them and they benefit from the discourses and spontaneously understand intuitive knowledge and meditation. Such persons are worthy of religious teachings.

The persons belonging to Rajoguna category can become worthy of the religious teachings, if they remove two drawbacks of ignorance and fickleminded-ness and discipline their mind by eating the right type of food. Such persons also need some discipline besides self-study.

The persons belonging to the category of Tamoguna are the lowest to become worthy of religious teachings. They suffer from the three drawbacks of foolishness. ficklemindedness and ignorance. Such persons are not worthy of listening to the discourses. They feel asleep during the spiritual discourses. They do not understand what rispituality

is, and they never firm in their views. First of all they should improve their food habits, followed by physical service to their master. so that they may be able to control their mind. after such an experience they will become worthy of attending spiritual discourses.

Journal Vigyani
September 1915

How The Soul Transcends

A Discourse of H. H. Param Dayal Ji Maharaj which was delivered to Mrs. Elizabeth Betti At Kinson of Virginia Beach U.S.A.

My purest daughter ! I want to tell you how the soul transcends time and space ? The medical science has discovered that in the middle of the forehead there is an organ, which seems to have no significance in human brain, which is called third eye. But in the case of birds and animals it does have a special function. Whenever there is some danger like unexpected heavy rainfall, or storm, the animals and the birds came to know about it before hand and flee from danger. So you see how useful the third eye is in animal kingdom. Although the medical science has not yet been able to discover the function of the third eye in man, yet the sages and saint know how it functions. In the case of human beings, when it is opened, the cosmic rays viberate in it and forewarn man about the dangers. The animals and birds are already forewarned because of their third eye, now the medical science is trying to find out ways and

means to activate this third eye of man.

I had discussed with you yesterday how Surat (Self) functions in physical body and in mental realm of man. When this Surat is fed up with body, mind and senses, it craves to go beyond them, because all these are the limitations and cause sufferings to the Self. This spontaneous detachment or Vairagya leads an individual to spiritual path. All great saints and spiritually realized persons experienced sufferings in their life and these sufferings inspired them to follow the spiritual path and to emanicipate the Surat or Self from the physical and mental realms. No one can experience the function of the third eye without having spontaneous detachment. I don't know why have you chosen to follow the spiritual path at this young age ? But I guess that you must have had some frustrating experience at this age, which compelled you to follow this path. The dissatisfaction of man is usually due three reasons. The first is some physical ailment, the second is because of the suggestions and impressions from the outside world the third may be due to some domestic problems or troubles. Whatever may be the cause, but whenever a person seeks the path of spiritualism, it is because of sufferings and frustrations. That suffering is due to the ignorance of man. The great Buddha was also dissatisfied by the external world. He saw a sick man,

he saw a dead body etc., these sights stimulated him to contemplate within himself to search out a heaven of peace for his Surat or Self. You perhaps know about the Association of Research and Enlightenment at your town Virginia Beach. Some members of this Association met me in Delhi last year. They presented me a book written on Edgar Cayce, who used to give readings for the ailing persons and also some prophecies. How could he make prophecies, while he was asleep ? Dear daughter ! When a person goes to sleep, his attention of the soul or Self dissociates itself from the physical environment. Every human being is gifted by nature with the power of the third eye. But nobody makes use of it. Those who want to use this third eye they have to adopt certain methods to become obvious to the physical surroundings and physical knowledge, so that they may become aware of that knowledge which comes through the third eye. The Religion of Saints prescribes a method which consists of Simaran or the repetition of some holy name (which people call Mantram). This method helps to concentrate the mind on the center of the forehead. This concentration is possible by the repetition of the name or the Mantra or name given to the aspirant by his Spiritual Guide or, Spiritual Father. When a person engages himself in Sumiran, he rises above his physi-

callsenses. This third eye, which is in the middle of the forehead is called Trikuti. So my dlearest daughter ! I have told you that every human being is gifted with the third eye. But nobody is aware of its presence due to ignorance. So he cannot use it like animals and birds. I have told you about the pat for those. Who want to penetrate through this third eye and gain the invisible knowledge of things and happenings. This method of going inside and repeting your Mantra is the method and the procedure to develop your inner vision, which transcends the physical realm. But one has to follow the proper procedure with the guidance of the Guru or Master.

I have explained to you that the spiritual development and the enjoyment of the bliss by Surat or Self is possible only through by the repetion of the Mantra and also told you that. Mantra or name, or word for repetion must he given by the guide, Guru or the Master. This name or word has special significance for the disciple. Unless the meaning and significance is known to the disciple the mere repetion of it cannot bring about any spiritual development. I will try to explain it with an example. You know, if somebody eats or drinks something sour in your presence, you might begin to have the flow of Sliva at the mere sight of it. Why does it happen so ?

The reason is that the sour object carries meaning for you. Sometime even the mention of a lemon might cause the flow of Sliva. Similarly, the spiritual Master gives a name, which carries meaning. The spiritual master must have the practical experience of that name himself. This is necessary, because when the disciple looks at the expression of his master, who is enjoying the spiritual bliss as also feels the similar bliss by uttering the name. The association with the spiritual master is necessary for experiencing the effect of the repetion of name. I have now reached a state which is that of infinite peace. I have passed through all the lower stages of cosmic rays, mental regions and even spiritual regions. Now the people who come into contact with me automatically get spritual benefit. One is certainly benefitted spiritually by just being in the presence of the master. You have come from America to India not accidently, but due to your past Karma or His will, natural will. The master only suggests to you the name for meditation, but what you have to do is to meditate into your own Self through the repetion of name regularly. Repetion of name helps an individual to rise above the physical and mental levels and to be free from the influence of worldly troubles and sorrows. A man without Simran is shocked by untoward happenings. Everyone experiences problems and difficulties in life,

Bnt meditation which conveys the desire of the solution to the problems through the third eye, brings about the resolution of the problems.

Let me explain it to you with an example. There was a school master, who used to give medicines to the patient in a village, to suppliment his income. He had no degree in medicine. He told me that year ago the richest man of the village came to him for treatment. The school master gave the rich man of that vilage some medicine, which had an adverse effect on him and he was almost on death bed. At midnight the son of that richman came to the scbool master and told him that his patient was dying. Now the school master was shocked. He did not know what to do. He had full faith in God. He prayed to God earnestly. A light appeared before him and he saw my image in that light. He had never seen me before. That image of mine told him that he should go to the house of his patient and give him an injection, which was already lying in the shelf of his medicine cabinit. The school master followed the instructions of that image and the patient was saved. After a few months that school master met somebody, who was one of my followers. He gave the school master our magazine to read. The school master saw my picture in the magazine and was amazed, because that picture was

the picture of his soviour whose image had appeared in the light.

Oh my dearest daughter ! I have come in the Physical form of Faqir to remove the ignorance of the people. The people who do not know the truth. All the happenings are governed by a nutural law. Why did my image appear to the school master ? I speak the truth that I had no knowledge of my appearance. Four years ago I went to a village. Which I had visited before. A man came to me and placed a baby is my lay saying, "Baba Ji ! You are great. This body is your gift." I was surprised to hear this. He related the story to me. He told that he had been married for eighteen year, but had no issue. His parents wanted that their son should get married again to have a child. They were my followers and had my pictuce in their room. When the daughter-in-law came to know about the re-marriage of her husband, she immediately went to the room, where my picture was hanging. She cried in front of that picture bitterly praying that she should be blessed with a son. According to her report a light appeared in that room and my image handed over to her a child of light and said, "Do not weep my child ! You will be blessed with a son. She was blessed with a son after ten and half months.

Dear daughter ! I had no knowledge of that happening at all. I even did know the name of the woman. I had never seen her or heard about her. Dr. I. C. Sharma's sister also tells many stories about my appearance at the time of troubles. All these incidents or, so-called miracles happen due to one's own firm faith and pure thoughts of ones mind and one is benefitted. If you concentrate within yourself and entertain sincere good and positive thought and pray sincerely your wishes are fulfilled. In Christianity prayer is supposed to be the fundamental law. In prayers, the Soul or Surat activities the third eye, which sets the cosmic rays in motion and one comes to know the future happenings. On account of this spiritual law of radiation, you have been dragged here from your country. Thought is indestructible, like the matter, which is indestructible. Master or material energy simply changes its form. Thought is subtle matter and follows the same law. It changes the forms, but is indestructible. Science is gradually trying to understand this truth. You might have heared about Newton's theory of motion, according to which the motion starting from one place comes back to that place after a circuit. Your thoughts, your desires, your words generate motion, which goes up in the atmosphere. It remains there for sometime and returns to the person and place

from where it had started. Hence whatever you think, you actually experience that. So we should never entertain negative thoughts for others. When a person prays sincerely, his pure thoughts come to his help directly or through other persons.

Dear Daughter ! You have come to India because I had a desire that my message of truth should be known to the West. These ideas of mine were already in the atmosphere, they influenced your mind, because you were the fit recepient. Oh my dear one ! You are crying. Don't cry my daughter ! even though crying and weeping are essential in love in the beginning, because the mind is not strong and capable of experiencing the feelings. Dear daughter ! you should consider me as your father and I will treat you as my daughter. The main purpose is to remain in touch affectionately, through physical, mental or spiritual communication. A person, whose love is limited to physical body only, he will be at physical level. But when a person rises to the spiritual level of the third eye, his soul is not confined either to body or to mind. The third eye is just in the middle of the forehead. When the Surat passes through this stage one gains the experience of higher regions. I am told that Edgar Cayre gave

many propecies which came true. But he did all this, when he was asleep. But if a person adopts self-control, one can have these experiences while awake.

The concentration on the third eye brings about mental enjoyment, which brings wisdom, prophecies etc. But mental peace is higher than all these. Mental peace is as necessary for the mind, as sleep is for the body. One cannot get peace of mind without the enjoyment of the mind through the third eye.

The purpose of a true religion is to suggest the remedy for the suffering of humanity. This is true spiritualism. The life teaches man through saffering. The perfect peace is attainable only when man goes back to his orgin. The origin of man is that inivisible energy which is manifested in Light and Sound, and which is beyond the self and beyond the world, one has to reach one's original home though Sound. Even in the Bible, this Sound is referred to as Word in the gospel of John. It is stated that in the beginning Word existed with God, Word was God. Ancient sages of India have mentioned that this Sound is Cosmic Word, which they call Shabda-Brahman. So this is true that Light and Sound enter

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

into the spermatozoa of the father which causes the origin of the child. Sometimes it happens that even without the spermatozoa from the father, a woman conccives a child Birth of Jesus Christ is one example to prove this. There are many similar examples in history. The purpose of saying all this is to prove that our origin is Light and Sound and also something else which is beyond Light and Sound.

I know that it is very difficult to understand. In the beginning I had also difficulty. But I had a strong desire to go beyond my mental Self. But I was so much engrossed and involved in the experiences at mental regions that I was not able to understand the truth. But luckily I had my Guru, my spiritual father, who had come in this world to reveal truth. He entrusted me the duty of a guru or guide. But at that time I did not know the significance of a Guru. But with the experience of a Guru, I was awakened and came to know the final truth of the perfection of man. Which is within himself. My disciples are my real Gurus.

MYTSTICISM VERSUS REALISM

by

H. H. Manav Dayal Ji Maharaj

Dr. Ishwar Chandra Sharma

The term 'Mysticism' needs to be clarified. This word has been misunderstood and misused, especially in the West. It is frequently being conceived of as a vague and mysterious search for esoteric truth, which a God-commissioned few alone are capable of experiencing. In actuality, mysticism is not represented by the secret revelations of Pythagorean societies, or occult rituals. But it is a valid use of psychological potentials, which are universally available. In the age of reason even mysticism, as a way of knowing, must be commensurate with other methods of science and reason, such as observation and experiment. However, if observation and empirical analysis cannot disprove the claims of mystic experience, they have no right to deny their existence. Because what the uniformed may call supernatural phenomena, are in reality natural and scientifically verifiable occurances, which the mystical method can

verify experimentally. True mystic knowledge is always corraborated by facts. Any knowledge or experience which tallies with objective fact, and is repeatable under the same condition, ought to be considered normal and hence scientific. Such experience and knowledge, though depending on mystical method, should be termed as the data of mysticism.

A true mystic is free from all superstitions and prejudices of caste, creed, race, nationality and even politics. His main purpose is to channel positive vibrations and to contribute his talents to the well-being of humanity.

Both intuition and intellect are equally important for the integrated personality of an individual. The spirit in man cannot be abstracted from the body and the body cannot exist without the soul force. Spiritual conviction and material development must go hand in hand. Firm faith in God, as the dwelling spirit, and the unitive force of the pluralistic universe, and intelleetual confidence in the progress of science must co exist in the human breast. We should neither be agnostical with regard to the existence of the spiritual, invisible and unmanifested central reality; nor should we be too sure of the intellectual conclusions in the domain of science, which is always open to modification and change. There is no doubt

that in this atomic age, no nation and no society can bring about social well-being and material progress without the services of science and technology. But the same time, we should not forget that the life of suffering and sacrifice could infuse spiritual oneness and universal love in each and every individual. An attitude of certainity, with regard to the subjective, immanent and transcendental self and an honest skepticism, with regard to the changings pluralistic and manyfold objective universe is admissible and even essential. The modern ethos, which is an amalgamation of economic, social, moral and spiritual values, is traditionally a realistic and dynamic way of life. acience helped man to understand the mysteries of nature. Similarly the important break through in spiritual reality may help him to discover his Self.

Spiritual conviction can be attained through the intuitive method, the method of Janana, which enjoins upon us a spiritual discipline. This discipline is called Yoga. There are three kinds of Yoga :—

(1) Karma Yoga (unattached engagement in active life).

(2) Jnana Yoga (intellectual knowledge of Truth)

(3) Bhakti Yoga (Love and devotion God).

All these three types of Yoga can be followed simultaneously, leading to the integrated development of the individual. One can combine in oneself all

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

the three. But when the devotional aspect, alongwith the intellectual knowledge predominates in a particular person, he becomes a mystic. Such a man usually follows his intuition and emphasizes rightness in morality and spiritual oneness in metaphysics. But some persons follow the empirical method and emphasize goodness in morality and material manyness in metaphysics. But both types of aspirants do agree on one point and that one point is that means should always justify ends, so that the right and the good should be harmonious. Truth must not be contradictory to facts, or antagonistic to the successful conduct of life. Applicability of Truth, therefore, is a view, which is both realistic and rational, with no place for superstitions or prejudice or cynicism. Mysticism, the truth of religion and of God, if they have to be considered acceptable, must not be contradictory. This pragmatic method of mysticism and realism must be followed in the fields of theology metaphysics, science and logic. Truth is objective and will be the same, whether it is known through empirical study, or the intuitive method of mysticism.

Mysticism is neither mythical, nor miraculous. Mysticism is the system of the proof of the existence of clairvoyance, precognition, telepathy and other extrasensory perception, as real experiential data.

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

In the age of science, reason and analysis, explicit terms are necessary. Somehow, the words 'intuition, 'mysticism' and 'spirit or spiritual' have been so poorly understood that the academicians are reluctant to use them in their writings and the scientists say that they are unable to explain the phenomena under the known laws of physics, chemistry and biology. On the other hand, some para psychologists have applied statistical methods to investigate in their field and have formulated hypothesis, psychokinesis and extracerebral memory, but they miss the core of the problem in trying to control the external situation without controlling or conditioning the self or soul of which all these phenomena are the effects.

It is a sad fact that everything, other than self, has been studied objectively, especially in the West. But no research has been done to gauge the inner nature of man. By some people soul or self is supposed to be a mechanical outcome of a chance combination of atoms and electrons. But that is not true. The soul force, generated by soul, which is more subtle and faster in motion than any physical force now known to the physics, is an unknown and unexplored phenomenon.

Physical and mystical phenomena are disregarded, as non-existent or neglected as abnormal, because

most of the people do not experience them. All the religions of the world have stated that the soul is non material, unlimited by time and space and is more than mind, consciousness and intellect, while all physical phenomena are within time and space and all sensory knowledge is explicable within the framework of mathematical measurement and mechanical causation. Hence, physical phenomena and sensory knowledge do have a spatiotemporal source and that source must necessarily be material. But telepathy, precognition, clairvoyance and mystical experiences are effects which defy mechanical causation. The obvious solution to this problem is that the objective factor causing all these must be an extraspatiotemporal factor common to all human individuals. The concept of soul provides the answer to the quest for that factor.

We must bolster science and challange superstition. But at the same time, we must carry out a dispassionate study of all that has been designated supernatural, abnormal, mystical and mysterious. Mysticism should not be confused with supernaturalism and abnormality. There may be greater or lesser degrees of mystical experience, but what has been considered to be the privilege of a chosen few, is actually the potentiality of all human beings.

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

may also come and sit in meditation.

Canadian :

Maharaj Ji ! will you kindly give me your good wishes ?

His Holiness

Certainly. I heartily wish you health, wealth and peace. If a man is starving and has no means of livelihood he cannot have peace in any case. He may do thousand types of Sadhana. First question is livelihood. This is the Truth. We, Mahatmas, come to you or you people come to us for what ? We want money. Why we go to foreign lands ? For Money. I am not free from getting money. But I do not cheat the people. If anybody thinks my doctrines and my way of expression are beneficial to mankind, he can serve the Be Man Temple with anything he likes. If I say I do not want money. I am a liar. I want the thing, but in the right way.

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My dearest Ownselves Satsangis,

Radhaswami and Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

In the last monthly message I had told you, in connection with the Satsang tour, that we departed from Ujjain in the morning of of the 5th May for Itarsi by the jeep of Shri Charanjit Singh. We reached Bhopal at about 12 O' clock in the noon. We stopped at the shop of the brother-in-law of Charanjit Singh for a short while. It was terribly hot and we all were perspiring profusely. Charanjit's sister had intimated us on telephone that she would prepare food for us and that we must visit her home. At the same time Shri Vijay Gupta the the general manager of Ashoka Hotel, Bbopal had ery politely requested us on telephone that he and

his family were anxiously waiting for us for many days past with a hope that we would surely stop at his residence en route to Itarsi for a short rest. Shri Vijay Gupta is the brother, of the wife of Shri Rishi Prakash Gupta of Delhi. His Late father was an ardent devotee of Manavata Mandir with which his mother and all her sisters have deep attachment. For these very reasons I decided to visit the residence of of Charanjit's sister after having a short rest at Vijay Guptas, and then to proceed to Itarsi. My dearest wnselves Satsangis, had you been with me on the occasion, you would have appreciated my decision. After 5 or 6 miles of journey in jeep we arrived at Shri Vijay Gupta's hotel at about 1. p.m. His very beautiful, air conditioned apartment was within the hotel complex. We felt great relief from excessive heat and physical tedium there in his apartment. His worthy wife had already prepared food for us and she served us with lunch within half an hour. During the after-lunch chat I was very happy to learn from Vijay's wife that she was the daughter of D . Shruti Dhar Gupta the retired Principal of Govt. College, Rajasthan. He was a very intimate old friend of mine. Dr. S. D Gupta was the professor of Biology in the Dungar College, Bikaner in 1950 and we were fast friends At that time his daughter

was no even born. I am apprising you, my dearest Satsangis, of all this to let you undrstand that only those satsangis come in close contact with the Perfect Master who have good merits in them in the present well as past lives.

Having had about two or three hours rest at Bhopal, we arrived at the residence of Shri Charan Jit's sister at about 5-30 p.m. After a short stoppage of about half an hour there we proceeded to Itarsi and arrived at the residence of Shri Charajit Singh in Itarsi via Hoshangabad at about 9 p.m.

At the residence of Sh. Charanjit Singh Ji Satsangis continued to come in great numbers till 11 O' clock in the night. Majority of the satsangis in Itarsi are Sindhis whose devotion is unbounded. Param Dayal Ji Maharaj used to visit Itarsi every year and hence the impression of the religion of Humanism (Manav Dharma) on the satsangis there is very deep, In the morning satsangis began to pour in from 5 a.m. I fully realize the devotion of these pure-hearted innocent satsangis, so I never object to their coming for my blessings in the early hours of morning, I talk to them in Sindhi language, particularly to the old Sindhi ladies. This treatment of mine is very pleasing and assuaging to them. At 6 a.m. I delivered my Vandana Satsang based on the

(hymn) recited by Sadhana Ji after which I went out for morning walk accompanied by Shabdanand and Sh. Charanjit Singh. On coming back from the walk, I took my bath and breakfast, and we went to the residence of Sh. Sunder Das in the Sindhi Colony where a general satsang had been organized at 9 a.m. Besides the satsangis of Itarsi satsangis from far off places also had come to attend the satsang. This Satsang had a deep impression on the andience many of whom had Naamdan (initiation) after the satsang.

Thus the mission of Manavta (Humanism) of Param Dayal Ji Maharaj is advancing and Manav Parivar (family) is increasing day by kay.

We took rest in the noon in the house of Shri Sundar Das and blessed all the members of his family individually. The evening satsang that day was also held at the residence of Shri Sundar Das Ji.

I have earlier told you many times that the faith and devotion of the Sindi satsangis of Itarsi is profound due to the radiations of Param Dayal Ji Maharaj. Although I know that the Sindhi satsangis are not conversant with Hindi language, yet I feel that they understand every word of my satsang because the language of satsang is the language of the heart, and a deep intuitive communication, indepen-

dent of words, is established between the Satguru (PerfectMaster) and the satsangis. In Itarsi, I sometimes, deliver satsang spontaneously in Sindhi language. The love and the devotion of the satsangis of Hansi is bouudless.

Contextually. I want to tell you that when Param Dayal Ji Maharaj went to America for the first time to deliver satsang, I interpreted his satsang in English and while interpreting, I euphemized his ruthless words lest they should offend the Christian feelings. Param Dayal Ji Maharaj then used to say, "Sharma, you did well to euphemize my words." On his subsequent visits to America he began speaking English himself. The American Satsangis used to say that the Hindi language of Param Dayal Ji Maharaj was also intelligible to them. During his English discourses Param Dayal Ji Maharaj very often used to speak Hindi also, which was a unique pleasure to the Americans.

In my monthly messages I try to convey to you my inner feeling and language often lags behind the ideas and feelings, During the satsangs delivered in Itarsi the satsangis experienced an ecstatic bliss and all went in deep meditation at the end of every satsang.

After the Hansi program of satsangs, we left one

train for want of seat reservations and arrived at Agra in the the morning by another train which reached Agra three hours earlier than the scheduled train. We had to wait for two hours at the station. Then Shri Aravind Bajwa of Mathura and many satsangis from Agra arrived there to receive us. Part of our luggage was sent to Agra with the satsangis of Agra, to the residence of Shri Rajesh Gupta, and we departed for Mathura by the car of Shri Aravind because a satsang had been organized in the Community Hall of the Mathura Refinery in the evening .Shri Aravind and his worthy parents served us well and their eight years old son listend to every satsang with rapt attention. Satsangis of Mathura continued so come for consultations throughout the day.

In the evening the satsang was held in the grand Convention Hall of the refinery. Satsangis of Mathura as well as from Agra assembled in the satsang. I had forgotten to tell you that in the noon we visited the homes of Shri Hazari Singh and his younger brother Capt. Manohar Singh. It is necessary to tell for your information that this is the same Hazari Singh whose uncle had died many years ago. His uncle used to attend the Satsangs of Param Dayal Ji Maharaj. But prior to that he was a worshi- of godddess Kali. He feared his imminent death,

but Param Dayal Ji had blessed him that he would not die so soon. He, however, died and again became alive, and related his experience of his death thus :

"When I was dead two angels of Yama (the god of death) took my soul to a place where a black goddess was sitting on a throne. She was devouring all the souls which were presented before her. I implored the goddess to grant me a meeting with Hazari Singh and Param Dayal Ji, before she devoured me. Then both Hazari Singh as well as Param Dayal Ji appeared there. Param Dayal Ji told the goddess, "Thou canst not devour the uncle of Hazari Singh." There upon my corpse regained life and became alive."

However, Param Dayal Ji Maharaj had explained this phenomenon in his satsangs and had said, "I did not appear there. It was the suggestion Hazari Singh had received from me which appeared in my form and redeemed him from death, because I had told him that he would not die soon. Thus his faith was strengthened. Since he previously worshipped Kali, form of Kali also appeared at the time of his death." Haz i Singh and his brother Capt. Manohar Singh have profound devotion for me and Manava a Mandir. Mano a , Singh has christianed his home as 'Faqir Bhavan, Ever since I am guiding the satsangis, in accordance with the orders of Param Dayal Ji Maharaj,

I have experienced that whatever Param Dayal Ji Maharaj had ordered his satsangis individually to do, the same words gush out spontaneously from my mouth for the same satsangi. Not only this, but also when I visit any of my devoted satsangis and sit in one of the sofas in his room, he immediately speaks out. On this very sofa Param Dayal Ji Maharaj also used to sit." Such incidents happened in India as well as in America. When for the first time I visited the home of Shri K. L. Agrawal in Delhi along with Shri Nand Lal Ji, Shri Agrawal atonce said that Param Dayal Ji Maharaj also used to sit in the same sofa in which I sat. Exactly the same happened in America when I went to the house of Shri Ajit Kumar. If I relate all such happenings to you, it will require a big volume. I simply want to tell you that where there is deep and true love between the Guru (Perfect Master) and the disciple, there is a silent communication of thoughts and feelings absolutely independent of speech. In the evening satsang at Mathura some very learned people from the Refinery Colony also participated apart from the satsangis. To them my satsanw proved very beneficial as all their doublts got automatically dispelled from their minds.

In the morning of the 10th May we arrived at the residece of Shri Rajesh Gupta in Agra. Many

Satsang's from outside had already arrived there and had been anxiously waiting for me since May 1, 92. Among them was one Shri S. L. Sai from Gwalior a a very old satsangi of Data Dayal Ji Maharaj He had cherished an ardent desire for the last many years to see me. He had a special satisfaction and beautitude from my mini-satsang apart from the personal talks. This mini satsang was especially arranged for Shri S. L. Sai becanse he had to reach Gwalior before 2 p.m. as he had been advised to avoid sun heat due to old age.

The evening satsang had been organized on a very grand scale. Tents were pitched in front of Sh. Rajesh Gupta's residence which were over packed with satsangis. People had to stand outside the tents for want of space, listening to the satsang with rapt attention. Satsangis from Agra, Mathura, Avagarh and adjoining villages participated in the satsang. The satsangis of Agra had long since been insisting for satsang. I was happy to see the deep devotion and faith in them.

In between the gap of morning and evening satsnng at 11 a.m. we went to the residence of Hazur Agam Prasad Ji Mathur at Peepal Mandi to see him. In the tradition of Radhswami faith of Agra started by Swami Ji Maharaj and established by Hazur

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

Maharaj Rai Saligram Sahib, the centre of Hazur Agam Prasad ji Mathur the grandson of Hazur Maharaj is the only one where satsang is held regularly without break, and thousands of people are being benefited. Besides being an adept in spiritualism Hazur Agam Prasad ji Maharaj is an eminent scholar too. Despite his indisposition, he gave special time to meet me. Full of love and affection, he talked to me for more than an hour which created an atmosphere of satsang. His one assertion was really very appealing to me that those who hold satsangs in the name of Radhaswami faith and who have made out big centres and Deras today, have altogether forgotten the name of Hazur Rai Saligram Ji Maharaj the very founder of Radhaswami Faith and the true successor of Swami Shiv Dayal Ji Maharaj, and do not even talk of his classical literature. In-fact, Swami Shiv Dayal Ji Maharaj was the very Word Organ (Gurumukh Anga) of the Supreme Being Radhaswami Dayal whose incarnation Swami Ji Maharaj was. There in that Supra-Spiritual atmosphere of Para-love that lasted for an hour and a quarter, whatever I said and whatever Agam Prasadji Maharaj reacted, was converted into a Satsang in which all those present there transcended in a state of trance. At that time Ach. Shabdanand, Km. Sadhnaji, Sh. Rajesh Gupta and Ach. Mohan Singh were with me. Apart from them the wife of Hazur Agam

Prasad Ji, his brother's wife along with some other members of the family and his secretary were present there. The love of Sh. Agam Prasad Ji so over-brimmed that both of us completely merged into one another. This experience of ours in Pipal Mandi is unforgettable. The following day on the 11th May at 6 a.m. we visited the birth-place of Swami Ji Maharaj in Panni Gali where he practiced the Yoga of Light and Sound the whole of his life and started the nectar-shower of his satsangs on the special insistence of Hazr Rai Saligram Ji Maharaj. His grand mansion is worth visiting. We minutely observed the rooms in which Swami Ji Maharaj used to meditate and hold satsangs. We went up the high stairs leading to the vast hall where some devout satsangis were reciting Shabad poem from the 'Sar Vachan Nazam.' We also particidated in the Path (recitation) after whic Prasad (Blessed food) was distributed to all. The devotees were happy to know that I am serving the Radhaswami Mat in the tradition of Param Dayal Ji Maharaj. I was pained to know that even in the magnificent residential palace of Swami Ji Maharaj the tradition of satsang was not continuing- The person incharge of the complex told me that in future I may reside in the palaee.

In the morning and evening satsangs of 11th May the member of participants was very large.

After the evening Satsang we left for Mathura with Shri Arvind Bajwa in his car because we had to reach Aligarh the following day. Having left Mathura in the morning of the 12th May we arrived in Aligarh at the residence of Shri Govila at 8-30 a.m. After light refreshment a mini-satsang was held for those satsangis who had been waiting for me since early morning. All the day satsangis of Aligarh continued to pour in. The wife of Shri Ravi Dutta Ji served us meals as usual. Shri Duggal and his family members came to see me before the evening satsang and insisted that we should have dinner at his residence. The evening satsang was very effective. Shri Rajesh Gupta and his family from Agra participated in the Satsang. After satsang about ten persons dined at Shri Duggal's residence. We came back to the residence of Shri Govita for the night rest.

On the 14th May after the morning breakfast we proceeded to Dayal Nagar. The satsang started there at 8.30 a.m. and finished at 10.30 a.m. I always go to Dayal Nagar during my visit to Aligarh. This place is a holy pilgrimage. Here Data Dayal stayed for a fairly long time and published literature of a very sublime order. He continued to deliver satsangs there. Within the building of Dayal Nagar a Post Office is housed by the name of Dayal Nagar Post Office. Shri Prakashji resides at this spiritual centre. It was the wish of Data Dayal that Dayal Nagar should be developed into a world centre of

spiritual practices and meditation. Later on when I read the preface of Data Dayal's Maha Ramayan, he has mentioned there that his spiritual grandson will develop this centre. I have mentioned all this contextualy. One of the owners of the land of Dayal Nagar has donated his share of 7,000 sq. yards of land for the centre. It is hoped that the remaining sharers will also give their shares of land against some cash payment for this sacred cause. I will be informing you about it in future.

In this monthly message I will give you the remaining part of information of the tour in brief due to paucity of time and space so that I may be able to give you the information upto Guru Purnima in the next monthly message. From Aligarh we proceeded to Bulandsbahr and stayed there for a day. A family satsang was held at the residence of Shri Rakesh Sharma the proprietor of Vishal Talkies and a general satsang was held in a Dharmashala under the supervision of Smt. Adarsha Saxena in which hundreds of satsangis could benefit spiritually. All were served with a dinner in Bhandara after the satsang. Smt. Adarsha and Yajna Dutta Sharma and Smt. Anupam Saxena worked hard day and night to make the program a grand success. Shri Rakesh Sharma and his family did great service and then took us in his car upto Meerut where we stayed in the house of Shri

Narendra Tyagi. A satsang was held at the residence of Shri Dharmendra Tyagi in Adarsha Nagar. We went to the house of dear Brahma Singh Ji in Defence Colony and stayed there for a short while. From Meerut we drove to Muzaffarnagar in two cars provided by Shri Dharmendra Tyagi. Two satsangs were held at Mundbhar and Charithaval. An event worth mentioning here is that I spontaneously postponed one of the satsangs scheduled to be held at the house of Shri Ram Naryayan Tyagi at Chavithaval, for the nextday. Owing to this change in the program Shri Ram Narayan Tyagi could survive a fatal heart attack on the very day fixed for satsang. Due to this postponement of satsang he could be immediately admitted to the hospital at Muzaffarnagar where he was provided prompt and best treatment as a result of of which Shri Tyagi could survive the fatal heart attack.

We went to Sarsoheri and Yamunanagar by the jeep sent by Shri Dev Dutta ji engineer of Sarsoheri, delivered Satsangs at both places and finally we reached Manavata Mandir, Hoshiarpur Via Ambala on the 25th May at 2 p.m.

This much of information about the tour would be sufficient for my dearest satsangis in this monthly message. So far as the explanation of the four Values of life (Purusharthas), according to the Sant Mat

(Religion of saints) is concerned, the topic would continue further in the next monthly message. Here it is necessary only to tell you that according to the Sanatna Dharma (Eternal Religion) and Sant Mat Artha (Wealth) has not been forbidden, rather it has been accepted as a means to the attainment of Dharma (Virtue) and Moksha (Spiritual Perfection) just as satisfaction of desires and love etc. have been accepted as a means to the attainment of Moksha (Spiritual Perfection).

My dearest own Selves Satsangis ! Your beautiful lovely letters come to me from time-to-time in which you often write that you always curiously wait for the monthly message to receive because while reading it you feel as if you were yourself travelling along with me in the tour. A special feature of these monthly messages is that these are not merely a dry reportage of events, but they are also punctuated with pieces of valuable knowledge and satsang in such a simple and lucid style that even a most ordinary person can easily benefit from them This development of the monthly message is purely a result of your love and devotion and it will continue to be so. The monthly message is like a conduit between us through which the current (Dhara of your love transforming into Radha, touches me and my current from Agam (The Inaccessible state, manifesting in

the form of Swami (Supreme Being) and Shabda (Word or Sound), helps you transcend to the State of divine Supreme Bliss by lavishning world ly bliss on your souls.

With these words I send you my blessings and good wishes of this month and sincerely wish that health, harmony, prosperity and peace may reign supreme in your families.

Radhswami to all.

Yours in Faqir

Manav

IMPORTANT NOTICE

We are delighted to hereby inform all the Satsangis that the Supra-Spiritual Satsang of the Supreme Perfect Master H. H. Hazur Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj has been organized in the Auditorium of Salwan Public School, Old Rajendra Nagar, New Delhi, on 3, January 1993 at 9 a.m.

On this august occasion Dr. W. Rodenhiser the ordained Acharya of Manavata Dharma in America, is a'so arriving apart from the other Acharyas, who will express their spiritual experiences through their discourses.

Another satsang will be held by H. H. Hazur Manav Dayal Ji Maharaj in the Manavata Mandir, Hoshiarpur on 6, January 1993 at 9 a.m. Ach. Dr. W. Rodenhiser will also deliver his discourse.

All satsangis are cordially invited to attend these satsangis and benefit spirltual Bliss and the way of living a happy life in this wosld.

General Secretary
Manavata Mandir

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परमसन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ।।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।।
राधास्वामी, राधास्रामी, राधास्वामी ।।
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 29-11-92 को होगा।

BOOK POST

gd No. 26265/74

NOV 10th 1992

MANAV MANDIR

PB HSP—5

Address

4-7-89

2681. Thakur Bahadur Singh,
H.No. 4-7-90 Kumarpalli, H/E
Post. Hanamkonda,
Distt. Warangal (A.P)

From :

M A N A V A T A M A N D I R
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR . 146 001
PHONE : 22639

Shiv Dev Rao Press Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)